लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ

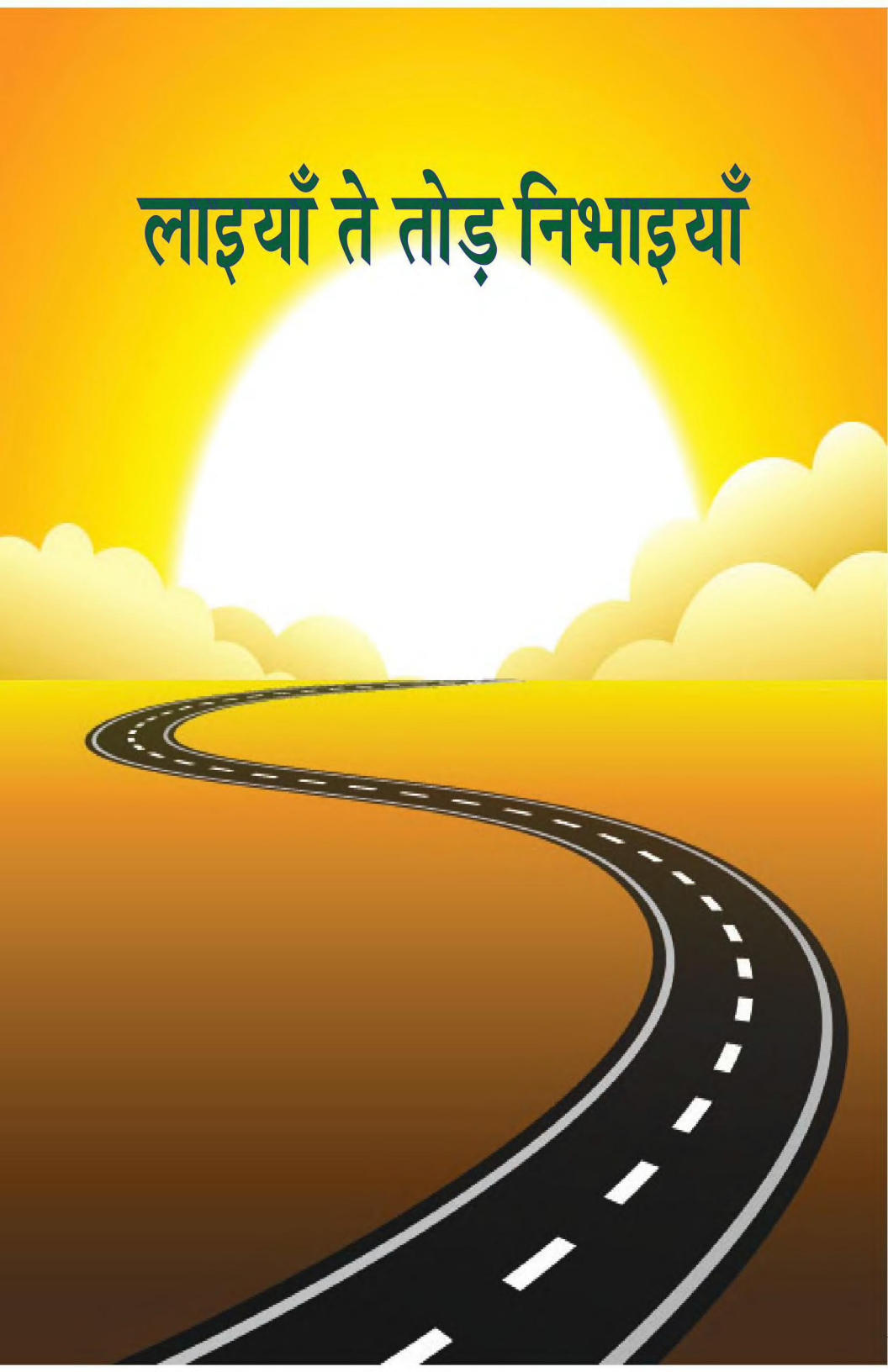

लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के
100वें जन्मदिवस पर
स्मारिका

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)
कार्यालय : 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172-2724460
मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19-डी, चण्डीगढ़ 160019
Website : http://www.kathamrita.org

© श्री म ट्रस्ट

सम्पादन : डॉ० (श्रीमती) निर्मल मित्तल
सहयोग : – डॉ० नौबतराम भारद्वाज
– सन्दीप नांगिया

प्रकाशन : प्रेसीडेंट
श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट)
579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन – 0172-2724460

आवरण : © iStock.com/lvcandy

मुद्रण :

लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ

लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ — यह एक पंजाबी कहावत है। इसका अर्थ है — यदि प्यार किया है तो 'तोड़' यानि अन्त तक निभाना है।

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता कहा करतीं, ''स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज हमारे घर ही रहते। ट्रस्ट का सारा काम हम इकट्ठे मिलकर करते। महाराज जी को लेकर मैं सैर को जाती। वे बीमार होते तो उनकी सेवा भी करती।''

यह सब देख लोग कहते, ''मिसेज गुप्ता! आप तो दिन भर महाराज के साथ ही काम में लगी रहती हैं। आपको तो उनसे बहुत प्यार है।''

मैं कहती, ''जी, अभी क्या पता? जिस दिन मेरी इस देह को लकड़ियों में रखा जाएगा, तब यदि कोई कहे — इसने तो अन्त तक साथ निभाया, तो समझना मुझे महाराज से प्यार था।''

और श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अन्त तक अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द के साथ, उनके कार्य, श्री म ट्रस्ट-कार्य के साथ ही रहीं। कैसे? — आइए देखते हैं।

— सं०

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- माँ सारदा के जन्मोत्सव पर सन् 1958 की प्रथम भेंट से ही स्वामी नित्यात्मानन्द जी की अन्तरंग शिष्या एवं उनके ठाकुरधाम–गमन के पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला का प्रकाशन और उसका हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- बंगला कथामृत का हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
  - हिन्दी 'श्री म दर्शन' का 'M., the Apostle and the Evengelist' नाम से तथा
  - हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही अंग्रेज़ी–अनुवाद और प्रकाशन।

■

अनुक्रमणिका

	इस स्मारिका में...	...	vii
1	श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की स्वामी नित्यात्मानन्द के साथ प्रथम भेंट	...	1
2	1st Meeting of Prof. D. P. Gupta with Swamiji	...	11
3	Illumined Souls — Burning Bright	...	23
4	माँ ईश्वरदेवी से मेरी प्रथम मुलाकात	...	27
5	डायरी... श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की तीन दिन — 18, 19, 20 अप्रैल, 1968 की डायरी	...	33
6	ज्वलन्त विश्वास और जबरदस्त इच्छा शक्ति	...	41
7	मंज़िल उसे मिली जिसे रहनुमा मिला	...	47
8	Love and Chastisement	...	57
9	The Divine Power is Guiding Us!	...	65
10	श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता — एक विलक्षण व्यक्तित्व	...	69
11	लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ	...	75
12	In Search of Sri Ma Darshan	...	81
13	At Home, with Spirituality	...	91
14	Dreams Brought into Reality	...	97
15	श्री 'म' दर्शन का अनुवाद-रूप व्रत	...	105

16 पुष्पांजलि ... 109

17 श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की कतिपय कविताएँ ... 113

18 पत्र/Letters

I. ईश्वरदेवी गुप्ता के पत्र स्वामी नित्यात्मानन्द के नाम ... 117

II. ... 132

III. Swamiji's Letter to Smt. Ishwar Devi Gupta ... 134

IV. ईश्वरदेवी गुप्ता का 'पापा' जी को लिखा पत्र ... 137

19 माँ! तुम्हें शत-शत प्रणाम! ... 145

●

इस स्मारिका में...

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को उनके बच्चे 'मम्मी' कहकर बुलाते। भक्तजनों की वे दीदी, दीदी जी, बहन जी, माँ, मम्मी, माता जी थीं। उनके गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द उन्हें पहले बीबी जी, फिर मन्नो (उनके घर का नाम), फिर बच्चों की देखादेखी 'मम्मी' कह कर बुलाते। श्रीमती गुप्ता को लेकर इन सबके हैं अनेक संस्मरण। इनके विषय में जो भी, जितना भी कहा जाए, कम है।

दृढ़ निश्चयी, ठाकुर-काम, गुरु-काम के प्रति पूर्ण निष्ठा, असम्भव को भी सम्भव कर देने वाली, लोकहिताय कार्य के लिए सर्वस्व त्याग देने वाली, मन-वचन-कर्म में एक, निज जीवन में पूर्ण अनुशासन, जबरदस्त पालन, अपनी सन्तानों, सेवक-भक्तों के प्रति भीतर से कोमल, बाहर से कठोर शासन — इन सभी व ऐसे ही अनेक अन्य गुणों की स्वामिनी, ममतामयी माँ के, इन 'जीवन्त' गुरु के सम्पर्क में जो भी आया, उस पर इनके विलक्षण व आकर्षक व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना न रहा। जो भी इनसे मिलता, ये पहली बार में ही उसे 'अपना' बना लेतीं। इनसे प्रभावित होकर जो जन इनके 'अपने' हो गए, इनसे जुड़ गए, ऐसे जुड़े कि फिर इन्हें छोड़ न पाए, उनकी सेवा को, श्री म ट्रस्ट की सेवा को अपना सौभाग्य समझा और उस कार्य को वे उनके पास रहते हुए उनके मार्ग दर्शन में करते रहे, उनके देहत्याग के बाद आज भी कर

रहे हैं पूर्ववत्; कई-कई तो और भी अधिक उत्साह से। इन सभी के अपने-अपने संस्मरण हैं, अपनी-अपनी स्मृतियाँ हैं। कुछों ने इन्हें स्वयं लिखकर दिया तो कुछों ने लिखवा दिया।

जिस-जिस ने अपने संस्करण दिए, वे इस स्मारिका में अपना स्थान पाए ही हैं। इसके अतिरिक्त बहुत कुछ ऐसा है जो श्रीमती गुप्ता ने निज ही कहा है निज मुख से। ऐसी बातें कथामृत, श्री म दर्शन, नूपुर आदि के निवेदनों में, उनकी भूमिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। फिर उन्होंने समय-समय पर जो पत्र अपने भक्तों को, अपने गुरु महाराज को, अपने परिवार-जनों को लिखे, वे सभी हैं जीवन्त दर्शन। इनमें से कुछेक को इस स्मारिका में स्थान दिया गया है। इस स्मारिका में कुछ पत्र वे भी हैं जो इनके गुरु महाराज ने इन्हें लिखे, ये पत्र सभी के लिए प्रेरणा स्रोत हैं, मार्गदर्शक हैं। कुछ पत्र धन्यवाद, कृतज्ञता प्रकाशन करते हुए भी हैं।

और भी बहुत कुछ है कहने को। पर समय की सीमा है। तो शेष फिर..., आगामी नूपुरों में।

— डॉ० निर्मल मित्तल

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

निज निवास, 579/18–बी, के पूजा–घर में माँ ईश्वरदेवी गुप्ता

❀ ❀ आशीर्वचन ❀ ❀

''मैं 83 वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी, रोगों से जर्जर इस देह में भी देख रही हूँ ठाकुर प्रतिपल मेरे साथ हैं। श्री म ट्रस्ट के माध्यम से ठाकुर के शुद्ध भक्तों-सेवकों द्वारा ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। आगे भी ऐसे ही होता रहेगा — मेरा यह पक्का विश्वास है क्योंकि ठाकुर अपना कार्य स्वयं भक्तों से करवा लेते हैं उनके हृदय में प्रेरणा देकर।

ठाकुर की सभी सन्तानों को मेरा शुद्ध प्यार!''

— नूपुर-1998, पृष्ठ 26

माँ ईश्वरदेवी गुप्ता अपने गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के साथ

1

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की स्वामी नित्यात्मानन्द के साथ प्रथम भेंट

— ईश्वरदेवी गुप्ता

स्वामी नित्यात्मानन्द से मिलकर पहली बार में ही श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को लगा था कि इन साधु से उन्हें भावी जीवन के लिए मार्गदर्शन मिल सकता है। उन्हें मिलकर श्रीमती गुप्ता को विश्वास हो गया था कि उनके गृहस्थ-जीवन को एक नया पथ, उनके अपने मन का पथ मिल गया है।

— सं०

स्वामी नित्यात्मानन्द : प्रथम दर्शन

1958 के अन्तिम के कुछ दिन मानो 1959 में होने वाले नव वर्ष के सूचक थे। गवर्नमेंट कॉलेज, टाण्डा उड़मुड़ (पंजाब) के प्रिंसीपल-आवास में प्राय: 9.10 बजे प्रात: नाश्ते के पश्चात् बैठक में बैठे थे गुप्ता जी और मैं। वार्ता हो रही थी। नव विवाहिता कन्या वीणा और उसके पति कैप्टन डॉ० जगदीश के विषय में। वे लोग अभी-अभी विदा लेकर, पंजाब से दूर, जयपुर से परे पुष्कर‌राज, अजमेर के निकट नसीराबाद (राजस्थान) कैन्टोनमैंट में चले गए थे। चाहे कन्या दो वर्ष से देहली में काम करती थी; बिछोड़े का दु:ख नहीं होना चाहिए था। किन्तु तब भी माता-पिता के हृदय में सन्तान के लिए ईश्वर ने जो स्नेह रूप में संरक्षण का भार दिया है वह हिलोरें मार ही रहा था।

तभी, श्री वेद प्रकाश प्रभाकर S.D.O. (P.W.D.) का चपड़ासी एक शुभ संवाद लेकर पहुँचा। (मानो ठाकुर मोड़ घुमा रहे थे।) भीतरी प्रार्थना: 'ईश्वर, कोई एक ऐसा जन मिला दो जो इन्हें (मेरे पति को) भारतीय संस्कृति की सत्यता पर विश्वास करवा दे।' जनवरी, 1934 से सर्वदा ही यह संघर्ष मन में चल रहा था। हिन्दी भाषा, हिन्दू विचार, हिन्दू सभ्यता तथा हिन्दू संस्कृति पर बहस के कारण मन-मालिन्य हो ही जाता था। तब Browning की पंक्ति — 'चाँद के दो रूप हैं, एक पत्नी के लिए और दूसरा संसार के लिए' की स्मृति से मन में शान्ति होती थी और मैं अपने कार्य में लग जाती थी। चाहे मन में इनके भी भारतीयता से प्यार था किन्तु इस संस्कृति के ठेकेदारों के आचरण से हम दोनों ही असन्तुष्ट थे। इस स्थिति के प्रति घृणा का कारण भी यही था। ये ठेकेदार सोचते कुछ हैं, कहते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं। शास्त्रों में तो मन, वाणी, कर्म को एक करने की बात कही है। इस संस्कृति के claim करने वाले संरक्षकों — आर्यसमाजी या सनातनी दोनों ही में यह गुण दीखता न था। जभी यह असन्तोष।

टाण्डा में एक दिन इसी तरह 'ईश्वर-विश्वास' पर वार्ता हो रही थी। बाहर लॉन Lawn में हरी घास पर सफेद, पीले, लाल, गुलाबी गुलाब के पौधों पर चढ़ती मार्शल नील की पूर्ण विकसित लताओं और स्टडी Study की खिड़की की चौखट तथा दीवार पर लिपटती मधुमालती के निकट हम बैठे थे। प्रकृति अपने प्रियतम से एकाकार हो रही थी। मन का भाव ईश्वरीय भाव में निमग्न था। तभी न जाने किस बात पर मेरे 'ईश्वरीय विश्वास' को चोट लगी। ये कहने लगे, ''ये सब ऊपर की बातें हैं। भारतीय संस्कृति कुछ नहीं। उन लोगों (पाश्चात्यों) का आचरण देखो, कितने सच्चे हैं, जिन्हें ये लोग (भारतीय) बुरा, मलेच्छ, कह कर घृणा करते हैं। वहाँ अखबारों के स्टॉल चौराहों पर लगे होते हैं, कभी एक Penny का भी अन्तर नहीं मिलता और यहाँ...।''

नारी अबला, आश्रिता, कमज़ोर, दासी — क्या कहे? चुप! बेबस होकर आँखों से अश्रुधाराएँ कपोलों पर बह चलीं। उठकर भीतर आई और

मुख धोकर सोचना आरम्भ किया, ''मुझे क्या? मैं क्यों तर्क करती हूँ? मेरा विश्वास बना रहे। हे भगवान! मुझे क्या कोई कभी ऐसा जन मिलेगा जो इन्हें हिन्दू संस्कृति की पूर्णता पर विश्वास दिला सके?'

आहा, आज प्रतीत हो रहा है, वह निमन्त्रण वैसी ही मानसिक परिस्थिति में मिला था।

''क्या है?''

''श्री प्रभाकर, S.D.O. का निमन्त्रण है।''

''क्यों भेजा?''

''जी, उनके घर कोई श्रीरामकृष्ण मिशन के एक साधु महात्मा आए हुए हैं। आज शाम 4.30 बजे उनके घर पर उपदेश होगा।''

''किस-किस के नाम है निमन्त्रण?''

''जी, मेरे, आप के तथा अन्य भी अनेक यहाँ के सज्जनों के नाम हैं। श्री गुरुमुख सिंह और हैडमास्टर और उनकी पत्नी के नाम; डॉक्टर जगदीश तथा मिसेज के नाम तथा अन्य सब ही टाण्डे के बड़े लोगों के नाम हैं।''

''जाओगी?''

''हाँ, आप भी चलना।''

''नहीं, मैंने तो श्री रघुनाथ को टाइम दे रखा है। शहर जाना है।''

''अच्छा, मैं Mrs. Head Master आदि के संग चली जाऊँगी। आप चाहो तो श्री रघुनाथ के संग आ जाना — उधर ही तो है उनका घर। वे तो (स्वामी जी) आए ही तीन दिन के लिए हैं।''

''देखो, आ सका तो आ जाऊँगा।''

''(उदासी और निराशा से) अच्छा ठीक है। मैं तो जाऊँगी ही।''

वह सारा दिन मन जाने किस ध्यान में मग्न रहा, कह नहीं सकती, किन्तु था किसी अन्य लोक में, मानो मेरा कोई खोया जन मिलने वाला हो। अद्‌भुत लगन थी। शीघ्र-शीघ्र घर का काम समाप्त किया। जाने के लिए

Headmaster को कहलवा दिया। ये चाय पीकर appointment के लिए चल दिए। मैं, धन्नो बहन, मथुरा वाली को रात के खाने का प्रोग्राम बतला कर तैयार हुई S.D.O. साहब के घर जाने के लिए। मन में खुशी ऐसी थी मानो अनन्त काल से बिछुड़ी हुई बेटी अपने पीहर जाने की तैयारी में हो।

सुन्दर गुलाबों ने कहा, ''हमें भी उनके चरणों में ले चलो'' — मानो वे उन्हीं अनन्त चरणों में धरे जाने के लिए जीवन धारण किए हों। फूलों में काँटे भी थे — एक चुभा और भीतर से फूल काटने की कैंची की याद दिला गया। भीतर गई — कैंची उठाई — वह भी मानो सिहर गई — अपने जीवन धारण की सार्थकता के विचार से। फूल काट लिए। मन का उद्वेग बढ़ रहा था। मीरा-यशोदा-गोपी चली थी श्री कृष्ण को मिलने। अपना जो कुछ था सम्भवत: अनजाने फूल के रूप में समर्पण करने की अन्तर-इच्छा लेकर।

मैं, मिसेज़ धीर तथा धीर साहब चले S.D.O. जी के घर की ओर। मार्ग में अनेक प्रकार की बातें हुईं। मुख्य थीं : मैंने कहा, ''मैं कभी महात्माओं के पास नहीं जाती। न जाने क्यों इस ईश्वरीय वार्ता और आचरण वालों पर मुझे विश्वास ही नहीं होता।'' वे लोग दोनों ही खूब पूजा-पाठ करने वालों में से थे। पक्के सिख। मिसेज़ तो घर में साप्ताहिक कीर्तन भी करती थीं। नित्य 'गुरु ग्रन्थ साहब' का पाठ होता था उनके घर में। 'बाबा जी' के कमरे में रात-दिन पंखा चलता था। रात्रि में भी दीप-धूप। किन्तु मन, वाणी, कर — तीनों एक point में न होकर एक सुन्दर त्रिकोण बनाते थे। उनकी बातें मन में बैठ रही थीं परन्तु आचरण में एकत्व न होने के कारण बुद्धि पर प्रभाव नहीं हो रहा था।

प्रश्न था, क्या कोई ऐसा आदर्श पुरुष भी होता है, जिसकी ये बातें कर रहे हैं ? क्या आज भी 'सच्चा सौदा', करने वाले 'नानक' हैं ? भीतर से उत्तर आ रहा था, 'हाँ, हाँ, हैं — गांधी जी जो थे।' अभी उस दिन ही तो शरीर गया है। मैंने उन्हें 1934 में मौन धारण किये लाहौर में देखा था। उनकी वह अन्तर्भेदी दृष्टि उसी समय स्मरण हो आई जब उन्होंने मनु बहन, जो मेरे पास ही सट कर बैठी थीं को अपना ध्यान गांधी जी की ओर करने

के लिए आँख से मुझे संकेत किया था। मैं उस समय गांधी जी के सौम्य, आनन्दपूर्ण, ज्वल-ज्वल करते मुख की ओर टक-टकी लगाए बैठी थी। मन में ढाढ़स बँधा।

हम लोग डॉ. जगदीश का घर-हस्पताल पार करते हुए चर्च के पास से पहाड़ी के निकट पहुँचे। वहाँ बलदेव मित्र 'बिजली' की Social सेवा-त्याग की साक्षात् सुन्दर मूर्ति, पहाड़ी पर अपने पूरे बनाव शृंगार के साथ खड़ी थी। धन्य है वह मानव जो 20 वर्ष देश की स्वतन्त्रता के लिए जेलों में, जंगलों में रहा। वह वास्तव में ही ऋषि पुत्र है — पत्नी-पुत्र-माँ, किसी में भी आसक्ति नहीं — केवल एक भाव, एक विचार, एक कर्म — गांधी जी का अनुसरण करना। वही अब अपने जन्म स्थान को स्वर्ग भूमि में बदलना चाहता है। कितना त्याग! धन्य 'बिजली', धन्य तेरा मन-वाणी-कर्म!

हिंसक जानवरों से भरी इस पहाड़ी को नन्दनवन की पहाड़ी-सा बना दिया है। आज उन्हें इस देवी के शृंगार का, भाव-विचार का काम है और दूसरा जन्मदात्री माँ की सेवा का और एक धरती के नादान मासूम बालकों को भारतीय माँ संस्कृति के ईश्वर रूप बालक बनाने की शिक्षा देना। एक ही हैं विचार-वाणी-कर्म।

'सबका भला करो भगवान, प्रेम प्यार की रीत सिखा दो, हम हैं एक समान।'* वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव मानो साकार हो खड़ा है।

हाँ, तो हम Post Office पहुँच गए और प्रभाकर S.D.O. के वास स्थान के लिए पूछताछ की। पास ही एकजन खड़े थे और उन्होंने हमें गलियों में घुमाते हुए श्री वर्मा के घर के सामने वाले घर पर ला खड़ा किया।

हमने जूते उतार कर, हाथ धोकर, सिर की साड़ी ठीक से ढक कर भीतर प्रवेश किया। जूतों की अनेक जोड़ियाँ थीं बाहर।

कमरा भरा लोग बैठे थे — एक ओर स्त्रियाँ, दूसरी ओर पुरुष। एक ओर खिड़की के नीचे एक बड़े तख्तपोश पर सुन्दर सज्जा के ऊपर सफेद

* ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा रचित एक भजन।

चादर तथा गाऊन था। वहाँ श्री स्वामी जी सौम्य मुख, उन्नत ललाट, भाव विभोर नेत्र लिए भगवा वस्त्र पहने बैठे थे। चरणों के निकट फूल रख कर हाथ जोड़ कर श्रद्धा से चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने दाएँ हाथ से पास ही नीचे स्त्रियों की ओर बैठने का संकेत किया।

कौन हैं ये सौम्य? मन खिंच सा रहा था। प्रभाकर जी ने परिचय दिया। अनेक लोग और आ गए — श्री/मिसेज़ रघुनाथ तथा गुप्ता जी भी पहुँच गए। डॉ. जगदीश और Mrs. Head Master पहले ही बैठे थे। मोहन आदि भी थे। मिसेज वर्मा एवं मदन लाल वर्मा भी थे। हिन्दु संस्कृति और सभ्यता, ऋषि-परम्परा और भारतीय धर्म-शिक्षा एवं आचरण पर परम पूज्य स्वामी जी ने बहुत कुछ बताया अनेक समय तक।

अनेक प्रश्न हुए — साधु Parasite आदि, भारतीय संस्कृति और इसकी न्यूनताएँ। गुप्ता जी का प्रश्न कुछ ऐसा ही था। वे ठीक से प्रस्तुत न कर सके। मैंने उठकर शुद्ध करके कहना चाहा तो स्वामी जी बोले — ''सबका अपना-अपना कर्म है, अपना-अपना प्रश्न। ये कोई limited concern नहीं (मुस्कराहट)। अभी प्रश्न ही clear नहीं है।'' और फिर non-stop भारतीय संस्कृति और उसके साक्षात् विग्रह ठाकुर श्रीरामकृष्ण परमहंस देव पर वक्तृता!

मैं तो अवाक्। प्रश्न फिर वही, क्या इन्हीं से तो मार्ग-दर्शन नहीं होगा? अन्तर चेतना में गुदगुदी।

''हम फिर आपको कब मिल सकेंगे?''

जिज्ञासा करने पर कहा, ''मैं तो दो-तीन दिन यहाँ ही हूँ। जिस समय इच्छा हो, आप आएँ।''

''श्रीरामकृष्ण को जानने के लिए कौन सी पुस्तक पढ़ें?''

''Gospel of Sri Ramakrishna by M., his householder disciple. Householder can also attain that state which a Sannyasin can attain. Read this book.''

''Wherefrom I can get it?''

Mr. Prabhakar (उत्तेजित होकर, leadership की भावना से) — I have the Gospel, मैं दे दूँगा।

हम लौटने लगे। Mr. Prabhakar ने गुप्ता जी को Gospel दे दी। कहा, 10-15 दिन रखें। खराब न हो। मुझे मद्रास आश्रम से भेंट मिली है।

पथ में मैं घर की ओर चल रही थी, किन्तु मन उनकी मुख-नि:सृत वाणी में था — 'गृहस्थ भी वही अवस्था पा सकता है जो एक संन्यासी पाता है।'

गृहस्थ कैसे पा सकता है? क्या-क्या नियम पालन करने होंगे? इन्हीं विचारों में रात्रि के 8 के लगभग घर पहुँचे। घर की हर वस्तु यही कहती प्रतीत हो रही थी : हम भी वह अवस्था पा सकते हैं। परन्तु कैसे? यह उत्तर नहीं था। रात को निश्चय करके सोई कि प्रात: गुप्ता जी को नाश्ता देते ही वहाँ चली जाऊँगी। यही किया भी।

प्रात: शीघ्र-शीघ्र स्नान करके चाय आदि का कार्य समाप्त करके चल दी उधर ही। तीव्र गति से चली जा रही थी। कब हस्पताल, चर्च, आश्रम, पहाड़ी, पोस्ट ऑफिस आये, पता भी न लगा — हवा की तरह घर में प्रवेश किया। दर्शन करके शान्ति हुई।

ऊपर कमरे में ऊँची चारपाई पर सफेद, बड़ी लेस की चादर बिछी हुई थी। चादर की लेस की झालर, तकिए की embroidery सुघड़ गृहिणी के गुरु-सेवा-भाव का प्रदर्शन था — नई रजाई। 'साधु पुराने कपड़ों में नहीं सोते' यह याद आया।

वहाँ तीन वर्षीय किशोर पवन प्रभाकर बैठा था — एक-दो अन्य स्त्रियाँ। श्री प्रभाकर भी थे। पू० स्वामी जी के लिए दूध-रेवड़ी-केला-बिस्कुट, मेवा-काजू-बादाम-किशमिश, नमकीन आदि आए। हमें भी प्रसाद मिला : 'खा लो, खा लो, ले जाना क्या?' पवन के बार-बार माँगने पर धमक से कहा, ''बच्चे को ले जाओ, बुरी आदत पड़ती है, यह कोई ठीक नहीं।'' Mrs. प्रभाकर उसे ले गई डरती-सी।

इधर मैं एक ही साँस में बोलती गई, ''साधु भगवा पहन कर क्यों पाप

कर्म करता है? मेरी एक सहेली है। उसकी शादी के बाद उसके पति, सास, ननद — सबने उसे गुरु के पास भेज दिया। गुरु कहता था, 'शिष्य का सब कुछ गुरु-अर्पण, सो पत्नी का भी पहले गुरु भोग करेगा। लड़की चाहती नहीं। यह क्या बात है? यह होशियारपुर की ही बात है...।''

पू० स्वामी जी, कभी न भूलने वाली एक नैसर्गिक मुस्कान बिखेरते हुए मानो मेरे अन्तर्मन का भाव जानते हुए, कहने लगे, ''हाँ, मनुष्य — वृत्ति ही तो है। सफेद वस्त्र में बदमाश नहीं होता क्या? वस्त्र में क्या है?''

बस एक चित्ताकर्षक मुस्कान और वह वाणी सदा-सदा के लिए अन्तर्मन को गुदगुदा गई। सोई चेतना को जगाने के लिए यह एक शीतल अमृत-बूँद पर्याप्त थी। उनके संसर्ग में रहने की इच्छा जागने लगी। यहाँ से ही सब कुछ मिल सकता है, यही मेरा आहार है। इच्छा न होते हुए भी घर लौटना पड़ा। जल्दी-जल्दी भागी। पैर बढ़ ही नहीं रहे थे, पर चलना पड़ रहा था।

चाय के बाद शाम को फिर मैं चली।

''आप भी चलोगे?''

''नहीं। तुम सुबह भी तो गई थी, फिर क्यों जा रही हो?''

''वे एक दिन ही तो और हैं, जाने को मन है।'' और चल दी।

''चलते-चलते, सैर करते-करते आ जाना उधर; यदि स्वामी जी आएँ तो उन्हें घर ले आएँगे।''

''अच्छा।''

पहुँची। ऊपर ही कमरे में सौम्य मूर्ति विराजमान। चरणवन्दना, प्रणाम आदि के पश्चात् प्रश्न किया —

''जी, घर में शान्ति नहीं मिलती। क्या करें? कई बार ऐसे मेहमान घर में आ जाते हैं जो घर के अनुसार adjust तो करते नहीं और जाते भी नहीं, तब क्या किया जाए?''

''हाँ, ऐसा होता है। उनके साथ पहले घर वालों जैसा व्यवहार किया

जाए, पहले उन्हें समझाया जाए कि यह परिस्थिति है, उसके अनुसार adjust करो। यदि न करें तो कह दो कि चले जाओ।''

''जी, यह कैसे कहा जाए? शास्त्र में तो 'अतिथि देवो भव' कहा है।''

''हाँ कहा तो है, किन्तु अतिथि तो दो दिन का होता है। सर्वदा घर में रहने वाला जीव अतिथि नहीं रहता।''

''परन्तु फिर भी न जाये तब?''

''तब डण्डा मार कर निकाल दो।''

'' *(हैरानी से)* डण्डा मार कर? यह कैसे हो सकता है?''

''हो सकता है। डण्डा क्रोध के वश में होकर नहीं मारना। पहले मन में ठाकुर से प्रार्थना करें, 'ठाकुर! तुम इस रूप में आए हो, तो मुझे भी ऐसा करना पड़ रहा है। क्षमा करो इस दुर्व्यवहार के लिए। इससे अतिथि-तिरस्कार का पाप नहीं लगेगा।

''भगवान ही तो सब कुछ होकर रह रहे हैं। डण्डा मारा नहीं जाता। हाँ, भगवान् ही तो चोर, हत्यारा, दुष्ट भी तो है, तो बुराई का प्रतिकार शक्ति रहते नहीं करना क्या? संकेत से, कहने से, समझाने से न माने तो सख्ती करनी ही होगी।''

गृहस्थ-जीवन को एक नया पथ मिला। शान्ति से रहने का एक नया सिद्धान्त मिला। अब दुष्ट, श्रेष्ठ में भेद करना सीखना होगा।

सुन रखा था स्वामी जी किसी से कुछ लेते नहीं, पूर्ण त्यागी हैं, हर एक के घर का अन्नजल छू तक भी नहीं सकते। मन में उठा, 'क्या ये हमारे घर आएँगे?' मन में अपने अतीत जीवन का एक-एक झूठ, चालाकी, बेईमानी, अतिरंजित साकार रूप में आकर खड़े हो गए। क्या करूँ? कैसे कहूँ? अन्तर्यामी हैं, ये सब जानते हैं। हमारे जैसे अशुद्ध आचरण वालों के घर ये नहीं आएँगे। ये न ही कुछ ग्रहण करेंगे। तो क्या हम इनकी चरण-रज से वंचित रह जाएँगे?

किन्तु गीता में तो भगवान ने श्री कृष्णावतार में कहा है, 'अपि चेत् सुदुराचारो...', भरोसा मिला। अब तो प्रयत्न कर रहे हैं शुद्ध जीवन व्यतीत करने का। कह कर तो देखूँ? सम्भवत: दया आ जाए।

बड़ा साहस करके भगवान का नाम लेकर कहा डरते-डरते, 'आप उधर, हमारे घर भी थोड़ी देर को चलें।'

''वहाँ क्या होगा? *(सोच कर मेरी ओर देखकर)* अच्छा, सन्ध्या समय सैर की वेला में उधर आऊँगा।''

''प्रिंसीपल साहब ले जाएँगे।''

''अच्छा, नहीं मैं स्वयं आ जाऊँगा।''

मन अतीव प्रसन्न एवं शान्त हुआ....

— नूपुर-2001, पृ० 81-90

2

First Meeting with Swami Nityatmananda

हम बात करें श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की, उनकी जन्मशती स्मारिका की और उनके पति प्रो. डी.पी. गुप्ता (श्री धर्मपाल गुप्ता) का उल्लेख/चर्चा न हो तो बात ही नहीं बनती।

स्वयं श्रीमती गुप्ता कहा करतीं, ''गुप्ता जी इतने सरल थे कि क्या बताऊँ? सरल के घर ही भगवान आते हैं। स्वामी नित्यात्मानन्द जी मेरे लिए भगवान ही हैं, भगवान ही थे। गुप्ता जी यदि सरल न होते तो स्वामी जी उनके घर सुदीर्घ 16 वर्ष* कैसे रहते?''

गुप्ता जी के इन संस्मरणों से पाठक भलीभाँति समझ सकता है कि, स्वामी जी के साथ हुई प्रथम मुलाकात में, ट्रस्ट की स्थापना में, ट्रस्ट के सभी कार्यों में, ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित होने वाली सभी पुस्तकों के प्रकाशन, अनुवाद आदि कार्यों में, दैनिक पूजा-अर्चना में, स्वामी जी की एवं उनके पास आने वालों की सेवा-सुश्रूषा आदि में गुप्ता जी का आरम्भ से अन्त तक अपनी पत्नी के साथ सहयोग तो रहा ही, जहाँ भी आवश्यक था, उन्होंने पत्नी को पूरी स्वतन्त्रता दी, एक आश्वासन प्रदान किया और अपनी पत्नी की अनुपस्थिति में समय-समय पर गृहस्थ को सम्हाला भी, भले ही अनेकशः भारी मन से।

---

* गुप्ता-दम्पति से मिलने के बाद स्वामी जी अधिकतर उनके पास, उनके घर ही रहते और उनका निवास ही स्वामी जी का Head Office (मुख्य कार्यालय) बन गया था। वे 1960 से 1975 तक यहीं रहे।

भारतीय समाज में पुरुष-मानसिकता को कौन नहीं जानता, समझता ? सुदीर्घ 16 वर्षों तक किन्हीं अन्य पुरुष को, फिर भले ही वह स्वामी थे, हर प्रकार से सुयोग्य थे, सर्वत्यागी साधु होकर सर्वजनहिताय कार्य में संलग्न थे, अपने घर में स्थान देना, अपनी पत्नी को पूरे मन से उनके साथ भले ही श्रेष्ठ कार्य हेतु, लगे हुए देखना ऐसा सरल न था।

फिर पत्नी के गुरु उनके अपने भी गुरु हुए विधिवत्। गुरु-आज्ञा पालन करते हुए रिटायरमेंट के बाद अन्य कोई नौकरी स्वीकार नहीं की तथा ट्रस्ट के कार्यों, श्री म दर्शन, कथामृत का हिन्दी से अंग्रेज़ी में अनुवाद, बंगला श्री म दर्शन के प्रकाशन आदि कार्यों को ही अन्त तक करते/निभाते रहे, पूरी निष्ठा से। बच्चों को, उनके मन को सम्हाला, सो अलग।

जो भी हो, गुप्ता जी के बिना श्री म ट्रस्ट का अस्तित्व ही सम्भव न था। स्वयं श्रीमती गुप्ता ऐसा मानतीं थीं और कहती भी थीं। धन्य गुप्ता जी!

इसलिए आवश्यक हैं 'स्वामी जी विषयक गुप्ता जी के संस्मरण' जो नूपुर-97 में भी छपे थे :

— सं०

Yesterday* I was asked by Dr. Mittal to dictate my reminiscences of Swami Nityatmananda ji Maharaj. Initially I hesitated. I thought that with my mental and intellectual make-up I might give a wrong image of Swamiji Maharaj who obviously was a great spiritual personality. When looking at another person the tint of the glasses on your eye is as important as the person or the incident seen by the eye. Alas! I have never been able to come up to the expectations of my people both in the worldly life as well as the spiritual aspect of it. However, I can still try to say something.

Most of the important happenings in my life have just been 'chance-happenings' in the sense that I seldom was ready for them. My first meeting with Swamiji also comes under the same caption. Those days I was posted as principal

---

* April 5, 1997

in Government College in Tanda-Urmur, Distt. Hoshiarpur (Punjab). I was ready to go to a saw-mill to get wooden logs cut to size for the house being built in Chandigarh when I received a message from a friend Sh. V.P. Prabhakar, S.D.O. that a learned Swami was to speak at his house after about half an hour and whether Smt. Ishwar Devi Gupta and I would care to attend the talk. Consequently Smt. I.D. Gupta immediately left for Sh. Prabhakar's house and I said I would follow as soon as possible. When I reached Sh. Prabhakar's house, there were already about a score of persons but Swamiji and Sh. Prabhakar had not yet arrived.

We didn't have to wait for long when Swamiji came with a smiling face, accepted our *pranams* and took an *aasan* almost at the same level we were sitting. From his looks and talk I immediately felt that Swamiji was not one of those monks one frequently comes across on the roads or even in a holy place. His words were chiseled as of a seasoned literary person without the hotch potch of mysticism or intellectual arrogance. He asked us "to take care of our spiritual life just as we were looking after our worldly and intellectual life."

At the end, he invited questions. I asked him, "How to develop the spiritual side?"

A friend close by said,"By *sandhya* and thinking of God."

I rather curtly told him that I had put the question not to him but to Swamiji. Swamiji smiled and said,"Gupta ji, there is a book— 'Gospel of Sri Ramakrishna'. Probably Prabhakar has a copy. Please read it and find out the answer to your question yourself."

Though almost an agnostic I was very keen to immediately read the book. I requested Sh. Prabhakar to lend

his copy to me and when he hesitated, I promised that it would be returned to him by next Monday — I think it was Friday when I borrowed the book.

I was wondering all the time what I should do to have my own copy of the book since it was a big volume and I had to return it within three days. By chance early on Saturday a member of my staff came to my house and requested me to let him leave the station by about 11.30 a.m. as he had an important business at Ludhiana the next day. I said I would have no objection provided he went to a certain book-shop, buy the book for me from there and if necessary to place an urgent order — expense no consideration.

Again by chance the book-seller had a copy and I got the book on Monday morning from my colleague. As I sat down to read it and had read only a few pages from the borrowed book, I almost felt a current passing through my body. Hardly had I read the narration of three or four visits of Sri M. to Sri Ramakrishna than I thought that all my questions were being answered one by one. In my enthusiasm I thought I would present a copy of this book to each of my near and dear ones who were somewhat spiritually inclined.

-2-

The next time that I had the privilege of meeting Swamiji was when he came a second time to Tanda-Urmur where I was still posted. Smt. Ishwar Devi Gupta, my life partner, was seriously ill. Swamiji came to see us, read out a few pages from a book which was being published by him. He sat with Smt. I.D. Gupta for a couple of hours and I excused myself because of my duties in the college. It seems Smt. I.D. Gupta was extremely impressed by what Swamiji read out to her, though earlier she had shown no great interest in

the Gospel that I was reading.

Next time I think after a year Swamiji again visited us at Tanda when Smt. I.D. was lying gravely ill necessitating her immediate shifting to Government Hospital, Amritsar. Smt. I.D. Gupta in a very feeble voice requested Swamiji to visit her even in the hospital. Swamiji said his programme was already made and that he could not change it. At the same time he whispered into her ears some words of assurance calling upon Thakur's grace on her.

We again saw Swamiji when Smt. I.D. Gupta had returned from the hospital and was convalescing. I was not there all the time with them but it was apparent to me that Smt. I.D. Gupta had mentally given herself away to Swamiji. I cannot say the same thing about myself for my *prakriti* is not that of a *bhakta* in the religious sense. I do not find it easy to accept even the word of the guru as a gospel truth till I have convinced myself of its veracity.

At one time when I was still at Tanda, Swamiji was staying with us for a fortnight or so. During these days a prominent student of the college, who also had political backing, created a problem by using unbecoming language for a lecturer, outside college premises after college hours. Unfortunately the lecturer also was not too tactful. The staff on one side and the students on the other created an almost unsolvable problem for me. I consulted Swamiji saying, 'The crisis would blow over if I said something to a political big wig, which was not strictly true. What to do?'

Swamiji said,"Do what the situation demands or be prepared to kick off every thing like us and stick to your idealism."

I chose the first alternative.

- 3 -

After sometime I was transferred to Chandigarh on a specific important assignment. I took some 13 months to finish the job. During these months Swamiji visited Chandigarh and stayed for about 2-3 weeks with a superintending engineer I.N. Mehta and his wife Hukum Devi. Smt. I. D. Gupta though not very strong in health, would leave home every day before nine o'clock and return late after sunset. Her satsang went on and on making me a laughing butt amongst my relatives.

After Chandigarh, in the year 1962, I was transferred to Rohtak— this was my own choice. Swamiji now came and stayed with us in our Rohtak-house for pretty long periods at a stretch. It was here that I came to know Swamiji rather intimately. I would put to him all sorts of questions and was at times surprised by his answer. Once while we were walking together, I said to him, "Swamiji, isn't prayer a kind of self suggestion?" He said he agreed with me. I never thought he would say so.

At another time I said to Swamiji, "If the whole world is illusion, you and I are also illusion, then who is instructing whom and what use it is?"

Swamiji said, "Swami Nityatmananda is instructing D. P. Gupta and it is going to be useful for the latter."

His reply did not satisfy me at the moment but as the time passed, I understood what Swamiji had said.

- 4 -

Swamiji used to spend some months at his headquarters in Rishikesh. I felt the desire that I should pass a fortnight or so in Rishikesh while he was there. This I did. Both in the mornings and evenings we used to go together for a walk on the bank of the Ganga. After sunset Swamiji would sit on the

bank of the river and sing hymns. I tried to do the same as much as I could. On listening to a particular hymn, I felt that I should copy it since it seemed to be coming extempore from the mouth of Swamiji and it pertained to M., his guru.

Next day I quietly sat behind Swamiji and tried to note down the wording of the hymn. I don't know Sanskrit and the hymn* seemed to me to be mostly Sanskrit and partly even Bengali. I took courage to read out my jottings written in Urdu to Swamiji the next day. He gladly corrected a word here and there and permitted me to make any use of it as I thought fit.

Smt. I.D. Gupta had translated Swamiji's Bengali 'Sri Ma Darshan' vol. 1 into Hindi after learning Bengali by herself. We decided to have it printed after Swamiji had approved the translation. I too began to translate vol. 1 from Hindi into English more or less as a hobby. Swamiji was happy to know it. When the translation was completed by me, I sat with Swamiji to get my translation compared with the original by him. Swamiji made drastic changes in my language. I even mildly protested but Swamiji said, "Gupta ji, don't forget that you are not writing a text book in English. You are trying to give to the reader in English what he cannot read in original Bengali. Good English or bad, the flavor of the original Bengali-text must be preserved at all cost."

After this there was no question of my trying to translate the work in King's English. After Swamiji had authorized me, this English version was also published in the year 1967.

---

* This hymn is incorporated in 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial' both in Devanagari and in English translation. Also it is there in 'Aarati-Bhajan' booklet published by Sri Ma Trust.

- 5 -

I have hinted above that Mrs. I.D. Gupta had mentally prepared herself to renounce family-life and take to spiritual pursuit under Swamiji's guidance.

One morning on 23rd December, 1963 Sh. I.N. Mehta, arrived at our Rohtak-house in a car to take Swamiji to Patiala. Swamiji was ready to leave. Suddenly he asked me whether he could take Smt. I.D. Gupta along with him after the consent of Sh. I.N. Mehta. I said he could. And Smt. I.D. left with Swamiji in the car. Our handicapped daughter was there studying in the Government College for Women. She could have fits at any time anywhere. So I was rather worried not knowing how I would be able to look after her and also run the establishment.

Smt. I.D. Gupta returned after a couple of months, if I remember aright. During this interval we managed as best as we could.

Ever since we had come in contact with Swamiji, we had started performing *aarati* in the evening in the Principal's lodge at Rohtak. A big room was set apart for *aarati* and *satsang*. Quite a number of local people and prominent functionaries of the Government in Chandigarh, visited Swamiji off and on. People began to think even of me as a confirmed devotee.

I returned to Chandigarh after retirement from government service in August, 1968. I had an offer of re-employment from Haryana Government and also from the Education Department of Chandigarh and the University of Kurukshetra. On consulting Swamiji I was told that I had sufficiently long engaged myself in service and that I must now spend my time in doing Thakur's work. I had come to attend a meeting of the Academic Council in Chandigarh.

Most of my friends slyly asked which job I was going to take up next. When I said that I was seriously thinking of not taking up any, they said that I was making the mistake of my life and that I would be very unhappy if I did not engage myself. This advice shook my resolve. I left the meeting before time and went to Sri Ramakrishna Mission Ashram in Sector 15 to seek advice of the Swamiji-incharge Maharaj Swami Bodhananda of this great institution. Swamiji's interview-time was over. Yet when he saw me, he led me in his room. I told him my problem. His reply was: "The problem of spending time in old age rises in the case of those who have no plans. In our case it seems you have enough to do— all problems are the creations of your mind. Do exactly what your Guru has asked you to do. There seems to be no need for you to go against his advice as you have enough of *dal-roti*, no economic problem and no important work in hand."

This advice set my mind at peace and I never again thought of taking up a job. However, I have never felt during these last 29 years of retired life that I am without work or feel bored.

I had retired from service in 1968 and had come to Chandigarh as said above. From this date to 12th July, 1975 when Swamiji gave up his body, he mostly stayed with us. Later on in the year 1972, we constructed a one room apartment specially for him.

- 6 -

Swamiji worked hard on his books while Smt. I.D. Gupta tried her best to make his stay comfortable. During this period I learnt to help in the kitchen. Swamiji was very keen that I attended not only to all my personal needs but also help the inmates of the house which he now began to call an *ashram*.

Once when Swamiji had gone to Tulsi Math in Rishikesh, I wrote to Swamiji about my personal problems vis-à-vis my other members of the family. Swamiji replied in rather a long letter which I thought, should be published for the benefit of others. This was done in the form of an article with the title 'M., the best Doctor'[1] in the 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial', which was published in 1982. Besides compiling this Centenary volume, 'A Short Life of M.', and subsequently a bigger life entitled 'The life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita', I have been translating Sri Ramakrishna— Sri M. literature running into some 20 volumes. All this I was able to do because of the initial guidance, I had received from Swamiji while translating 'Sri Ma Darshan' volume 1 and having the privilege of living with him. Many a time I have felt that this work has been executed almost automatically— without any deep urge or effort on my part. I have been telling my friends that it is a sort of hobby with me.

- 7 -

Another incident. Swamiji was a resident of East Bengal[2]. Like all Bengalis he was very keen on Durga-pooja. On the other hand I belong to a Northern Indian Baniya family. My mother used to celebrate Diwali with the worship of Laxmi every year with every member of the family participating. Since the death of my mother if there was any Hindu festival, I was keen to celebrate, it was Diwali and till lately also Janamashtami. On one particular Diwali-day I was busy making preparations for Luxmi-worship in our shrine when Smt. I.D. Gupta came and told me the Swamiji was very unhappy with me and that he might even leave us. I said I would myself accost Swamiji and explain. So I went to

1 See Noopur 1996, Pg. 17 for its Hindi translation.
2 Now Bangla Desh

him. He received me gently and let me explain to him that Laxmi-pooja was in our blood since time immemorial and that we never thought of replacing Laxmi by Ma Kali. Swamiji generously said that I could worship Maha-laxmi on that auspicious day and he himself would be present at the worship. And this is exactly what he did. Naturally I was very happy.

Diwali festival reminds me of another important happening. I was making arrangements for puja on a Diwali-day in Rohtak, trying to illuminate the altar with electric bulbs. Suddenly, while manipulating electric wires I fell down on the floor and saw an arc of light before my eyes. I, however, recovered soon and related the experience to Swamiji and Smt. Gupta. Swamiji said, I had been saved by Thakur for His work. So far as I am concerned, I don't know what had happened.

- 8 -

Swamiji fell ill and had an attack of paralysis on the right side on 26th February, 1974 and had to be hospitalised. Some of his disciples from U.P. came to Chandigarh to see him. We all together looked after Swamiji to the best of our capacity. Swamiji came back home from the hospital in rather a weak physical state but he completed the 15th volume in Bengali of 'Sri Ma Darshan', his great work. When the manuscript had been dispatched to Calcutta for printing, Swamiji had an attack of prostrate. In this state he needed a lot of personal attendance. Smt. Gupta along with many other devotee-helpers again started spending most of her time in attendance on him.

During the last few months of his life Swamiji was almost in the state of half consciousness. I also took up the duty of being with Swamiji as much as I could particularly from 1 a.m. to 6 a.m. at night along with another devotee. During these days Swamiji would say things which appeared to be rather disconnected and irrelevant if not impossible. One

early morning when I was along with him he indistinctly said, "Gupta ji, you and I are the scions of the same Rishikul." And he named the Rishi also. Conscious of my worldly attitudes and lack of *jnana* and *bhakti* I did not give much importance to what Swamiji had said about me. I only conveyed to Smt. I.D. Gupta who also took it in rather a casual manner. Imagine me a scion of a Rishi! I who never had full faith in the hymn to the guru which we beautifully recited every evening:

guruḥ brahmā guruḥ vishṇuḥ guruḥ devo maheshwaraḥ,
guruḥ sākshāt parambrahma tasmai shrīgurave namaḥ.

गुरुः ब्रह्मा गुरुः विष्णुः गुरुः देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

I have never been able to convince myself that a human being can be Parambrahma whether he is the Guru or an Avataar. By this statement I only mean the physical personality of the Guru or the Avataar. If I am able to see the Atman as separate from the body, I should be able to understand what the rishis meant when they said: 'अहं ब्रह्मास्मि' or 'गुरुः साक्षात् परमेश्वरः'. As D. P. Gupta in a human body as Swamiji had called me when I had earlier put him a question as above: I do not think I shall ever be able to appreciate these great sayings. This, of course, should not be construed as any lack of reverence on my part for Swamiji. I took him as a great spiritual personality and tried my best to follow his great teachings knowing fully well my incompetence and his greatness. After all Swamiji had transformed an almost agnostic into a person who has no other engagement in life than reading, dictating and hearing spiritual talk while still keeping his love of gardening and flowers alive.

At one time I heard Swamiji saying to Smt. Gupta, "Only this much for Gupta ji."

— नूपुर-1997, पृ० 63-76

3

Illumined Souls — Burning Bright

— Dr. Kamal Gupta

श्री धर्मपाल गुप्ता एवं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के सुपुत्र डॉ० कमल गुप्ता को उठन्त यौवन से ही स्वामी नितयात्मानन्द के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वयं देखा कि स्वामी जी के संग रहते हुए उनकी माँ ईश्वरदेवी गुप्ता का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास हुआ और अन्ततः उन्होंने जीवन के परम लक्ष्य को पा लिया। इसे ही वे अपने शब्दों में अभिव्यक्त कर रहे हैं।

— सं०

As I sit idly on the viewing balcony of my hotel in Manali, on the clear skies the late afternoon sun is illuminating the wonderous creation of Mother Nature. It is a glittering spectacle with the recently fallen snow shining brightly on mountains on all four sides, as if a giant horde of silver has suddenly risen on the horizon. The tall Deodars on the immediately lower slopes – some as old as 150-200 years – provide a deep green contrast. Houses with bright sloping roofs nestle in the hills. The river Beas makes its entry as a combine of many rivulets with its waters roaring joyously. No human sound to distract this symphony of natural light,

colour and sound, I am experiencing this spectacle bewitched and awestruck. Suddenly the sun goes down the hill. Now its reflection is mellow – the silver of the tall mountains is now

Top row— in centre 'Papa' (Prof. D. P. Gupta),
Below: from left— Kamal, Swamiji, and then Mummy (Smt. I. D. Gupta).

peaceful and all pervading. An intense emotion overpowers me – is this an unmatched spectacle signifying the glory of His light, colours and sound or does it signify His very own presence along with His blessed and illumined souls who came to earth for His designed purpose and returned to His lap – joyous and full of bliss? As this thought gains intensity, I start feeling the presence of both my parents on the horizon. Immediately the mind wanders to another thought. It wonders on these images and longs for an insight into the essence of the life of such souls. What drove mummy (Didiji as she was affectionately called) on the mission that she undertook? What were her compulsions? How did Thakur make her a tool to discharge a part of His great design?

While thinking about these matters in those divine surroundings, I realize that the common thread running

through her entire life was regarding certain basic issues – what is the purpose of life? Why was I born and what is it that my life must achieve? In Didiji's case, in different phases of her life, different answers seemed to have been assumed by her and a great deal of experimentation took place. Till she got married, the assumption was that the purpose of life was to be virtuous, hard-working and inculcate high ethical values with a strong belief in supporting all social activities which lead to the improvement in Indian society. There was an aggressive edge and no authority could diminish the outspoken advocacy and pursuit of ideas like empowerment for women through education and equal rights (coupled with denunciation of entrenched unequal privileges of men), independence of India and all such ideas which bunched together would reflect the nationalistic and benign philosophy of Gandhiji. The seed of religion was entrenched, though the dominant thought was against the cruelties and irrational practices which the traditional fundamentalist Pundits seemed so keen to carry on.

The second stage which began after she got married was marked by different strands. One was the notion of complete dedication to her family with no regard whatsoever to her personal comforts – the children must be given best education, proper ethical values must be inculcated with definite and visible effort to enforce equality between the daughters and the son. Due to her unstinted devotion and unity of purpose, she was successful in this phase also. It was actually a matter of pride for her that her children had done well. Even during this period, her desire to engage in action beyond self remained intense and despite her tremendous efforts to do her very best for her family, she drove herself hard (and some of us would say "too hard") to run classes for

the most deprived children and women and to fight for their rights.

This experimentation also gave her a lot of satisfaction. Yet the overarching question remained. Am I achieving the purpose of life? It was only in the third phase of her life that she got her answer. In her forties, she started remaining sick and then she was diagnosed with an acute form of ulcerative colitis – resulting in prolonged bouts of hospitalization. Faced with intolerance to the only medicine available that time, it became a tough task for her to even carry out normal chores. She subjected herself to the most rigorous discipline in all facets of daily life – for example for the next four decades or so, curd and khichri was her only basic diet.

At this very low phase of life she found her answers. The trigger was her meeting with Swami Nityatmanandaji. The doubts which troubled all her life vanished – as if a great source of light had illumined her whole self. She knew now the purpose of her life – remain in the world but float above worldly attachments, attempt to dedicate each breath to Thakur's work and meditate on him constantly and spread His message to as many and as far as possible.

So started this period of heavenly bliss where for all 24 hours each day, her endeavour was to follow the above path. To-day with the blessings of Thakur and at His behest, the work goes on through the efforts of His bhaktas. No wonder the hills are aglow with golden, mellifluous light of joy reminding us that ultimately all of us have to come 'home' in the same manner as Didiji did.

●

4

माँ ईश्वरदेवी से मेरी प्रथम मुलाकात

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

डॉ० नौबतराम भारद्वाज ने दसवीं की परीक्षा दी ही थी, तभी से वे प्रो० धर्मपाल गुप्ता के माध्यम से श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता व स्वामी नित्यात्मानन्द के सम्पर्क में आए। इन महान् आत्माओं के साथ डॉ० नौबतराम का मिलन एक सुयोग ही था याकहिए ईश्वरीय योजना। माँ ईश्वरदेवी से हुई अपनी प्रथम मुलाकात का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं ।

— सं०

माँ ईश्वरदेवी से मेरी पहली मुलाकात हुई 18 मार्च, 1965 को। उनके पति श्री धर्मपाल गुप्त जिन्हें परवर्त्ती काल में हम 'पापा' कहकर सम्बोधित करते रहे, उस समय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक के प्राचार्य थे। मैं अभी दसवीं की परीक्षा सम्पन्न कर के चुका था और लगभग दो महीने बाद ही मुझे उनके कॉलिज में प्रवेश लेना था।

हुआ यूँ कि 'पापा' ने मेरे गौड़ ब्राह्मण सैण्ट्रल हाई स्कूल, रोहतक के हैडमास्टर श्री जय भगवान कौशिक जी से कहा कि वे उन्हें अपना एक ऐसा विद्यार्थी दें जिसका हिन्दी का लेख सुस्पष्ट हो और जो उनकी धर्मपत्नी द्वारा हस्तलिखित पुस्तक की प्रैस में छपने के लिए साफ-साफ नकल कर के प्रैस कॉपी तैयार कर दे। विद्यार्थी को प्राचार्य-निवास पर हर रोज आकर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की देखरेख में यह काम

करना था।

हैडमास्टर साहब ने प्रिंसिपल साहब को मेरा नाम सुझा दिया और मुझे बुलाकर कहा, ''नौबत राम, यहाँ के गवर्नमैण्ट कॉलिज के प्रिंसिपल साहब अति ही सज्जन इन्सान हैं। उन्होंने मेरी एक ड्यूटी लगाई है। उनको एक ऐसे लड़के की जरूरत है जो हिन्दी में लिखे की सुन्दर-सुन्दर नकल कर दे। दो-एक महीने का काम है। वैसे भी तू रिजल्ट आने तक खाली ही है। तू वहाँ उनके घर चला जा। कल से ही जाना शुरु कर दे।''

हैडमास्टर साहब ने मुझे बता दिया कि प्रिंसिपल साहब का घर सिविल रोड पर सोऽहम् मन्दिर के बिलकुल साथ है। उन्होंने मुझे रास्ता भी समझा दिया।

मैंने इस घटनाक्रम का घर जिकर किया और अगले ही दिन से काम पर जाने की अनुमति माँगी। माँ-बाप सोच विचार करने लगे। माँ ने कहा, ''बड़े लोगों के यहाँ आने-जाने से बच्चा कुछ न कुछ सीखेगा ही। वे छोटे-मोटे आदमी थोड़े ही हैं। कॉलिज के प्रिंसिपल हैं।'' और उनके सरकारी कॉलिज में तो एक-दो महीने बाद उसे दाखिला दिलवाना ही है, पिताजी ने कहा और उन्होंने मुझे खुशी-खुशी जाने को कह दिया।

अगले दिन 18 मार्च को मैं रोहतक की सिविल लाइन्स स्थित सरकारी प्राचार्य-निवास में सुबह-सुबह धूप चढ़ने से पहले ही लगभग नौ बजे पैदल ही पहुँच गया।

घण्टी बजाने पर 'बच्चन' नाम का एक सेवक चपरासी बरामदे में आया और गैलरी में से अन्दर घुसते ही साथ वाले एक कमरे में बैठने को कह गया। कमरे में कालीन बिछा हुआ था, मैं उस पर ही बैठ गया। बैठने पर इधर-उधर नजर डाली तो देखा कुछ देवी-देवताओं की फोटो वहाँ लगी हुई हैं और एक सैण्ट्रल टेबल पर एक सफेद कपड़ा बिछाकर उस पर चार छवियाँ रखी हुई हैं जिन पर फूल चढ़ाए हुए हैं। समय गुजरने के साथ-साथ जान गया कि ये छवियाँ श्री श्रीठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द जी और श्री 'म' की थीं।

लगभग दस मिनट बाद मम्मी जी कमरे में आईं और उन्होंने कमरे के कोने में रखी एक छोटी चौकी को कागजों समेत उठा लाने को कहा। मैं चौकी लाकर बैठा ही था कि वे भी पास ही बैठते हुए बोलीं, ''तो तुम हो नौबत राम।'' मेरे 'जी हाँ' कहने पर उन्होंने पूछा — कितने भाई-बहन हो, कितनी दूर घर है, कैसे आए हो, यह घर ढूँढने के लिए कितनी जगह पूछना पड़ा, आदि-आदि। मुझे ब्राह्मण-सन्तान जानकर वे बहुत खुश हुईं।

''मेरे आने तक क्या करते रहे?''

''जी, इधर-उधर देखता रहा।''

''ये सामने वाली टँगी हुई फोटोज़ देखीं?''

''जी, हाँ।''

''बताओ किस-किसकी हैं।''

मैं भगवान रामचन्द्र जी तथा हनुमान जी की फोटो पहचान पाया। जब चुप हो गया तो वे मुस्कुराईं और कहने लगीं, ''अच्छा, बाद में बताऊँगी।''

उन्होंने चौकी पर पहले से ही रखे और टैग से बँधे कागजों का पुलिंदा उठाकर कहा, ''यह पुस्तक छपनी है। इसका नाम है श्री 'म' दर्शन। यह पहले भाग का पहला चैप्टर है। इसका एक पहरा खूब साफ-साफ लिख लो और फिर मुझे दिखा दो। कागज के एक तरफ ही लिखना।''

मैंने ''अच्छा जी'', कहकर लिखना शुरू कर दिया।

तभी एक भद्र पुरुष की आवाज़ हुई, ''अच्छा मन्नो जी, मैं चलता हूँ।'' मैं समझ गया कि यही प्रिंसिपल साहब हैं। मैं नमस्ते करने को उठा। वे इधर बिना ध्यान दिए ही गैलरी से बाहर की तरफ निकल गए। वे एक अति सौम्य व्यक्ति लगे।

जब एक पैरा मैंने नकल कर लिया तो मम्मी जी को दिखाया। तब तक वे मेरे लिए एक कप हॉरलिक्स बना लाई थीं। मुझे वह पीने के लिए कहा और मेरे लिखे पर नजर डालने लगीं। पढ़कर बोलीं, ''इससे भी और

ज्यादा सुन्दर और साफ-साफ लिखना। प्रैस वाले कम्पोजिटर ज्यादा पढ़े-लिखे तो होते नहीं। साफ न लिखा हो तो कुछ का कुछ समझ लेते हैं। तुम मन लगा कर लिखना।''

उस दिन पूरे साइज के लगभग तीन पेज लिखे गए। दोपहर को मैं अपने घर चला गया।

इसके बाद मैं नित्य प्रात: लगभग नौ बजे लिखने के लिए पहुँच जाता और दोपहर तक लिखता। धीरे-धीरे लिखने की मात्रा बढ़ने लगी और लगभग एक सप्ताह बाद ही प्राय: 9-10 पृष्ठ प्रतिदिन लिखे जाने लगे। लगभग सवा-डेढ़ महीने में लिखना पूरा हो गया।

उसके बाद मेरे लिखे का मम्मी जी की देखरेख में ही उनकी हस्तलिपि से मिलान किया जाने लगा। मैं अपने लिखे को पढ़ता और मम्मी जी के हाथ में अपनी कॉपी होती। संयुक्त अक्षरों को शुद्ध तथा स्पष्ट लिखने का मौका मिला। अब महसूस करता हूँ कि मम्मी जी की पैनी नज़र पाण्डुलिपि को इतना शुद्ध और स्पष्ट रूप देना चाहती थीं कि कम्पोजिटर से कम्जोज़ करते समय कोई गलती ही न हो। इसलिए बड़े ही ध्यान से नित्य मिलान होने लगा।

उन्हीं दिनों 12 अप्रैल, 1965 को पूज्य महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी रोहतक आ गए। मम्मी जी व पापा जी के साथ-साथ पूज्य महाराज का भी सान्निध्य-लाभ होने लगा। धीरे-धीरे उन सभी का ऐसा प्रेम मिला कि घर जाने की इच्छा क्रमश: कम होने लगी।

एक दिन मम्मी जी ने कहा, ''नौबत, तुम हर रोज घर जाते हो। जाने में देर हो जाती है और सुबह फिर भाग आना होता है। तुम यहीं सो जाया करो और छुट्टी-वुट्टी वाले दिन घर मिल आया करो।'' और मैं रात-दिन वहीं रहने लगा। पहले सप्ताह में एक दिन, फिर दो सप्ताह में एक दिन घर जाने का क्रम शुरु हो गया।

पूज्य मम्मी जी की ही आग्रह-प्रेरणा से पूज्य महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी ने रोहतक में ही 23 दिसम्बर, 1967 को परम पूजनीया माँ

सारदा की जन्मतिथि पर मुझे मन्त्र-दीक्षा देकर कृतार्थ किया। श्री 'म' ट्रस्ट की 12 दिसम्बर, 1967 को स्थापना हो चुकी थी और उसका रोहतक से ही पूज्य महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी की देखरेख में तथा श्रद्धेय 'पापा जी' और 'मम्मी जी' के प्रयासों के फलस्वरूप विधिवत् पंजीकरण करवा लिया गया था।

31 अगस्त, 1968 को पापा जी रिटायर हो गए। मैं उस समय बी.ए. के अन्तिम वर्ष में था। उन्होंने मेरा गवर्नमैण्ट कॉलिज, चण्डीगढ़ में माइग्रेशन करवा लिया और मुझे अगले प्राय: पाँच वर्ष तक पूज्य महाराज, श्रद्धेय मम्मी जी और पापा जी के कृपाश्रय में पलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

चण्डीगढ़ आने के बाद पू० मम्मी जी के मन में 'श्री म दर्शन' के प्रथम भाग के 'मिहिजाम खण्ड' को मूर्त्त रूप देने की इच्छा प्रबल हो गई। जिसके फलस्वरूप उन्होंने यह निर्णय लिया कि प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु में चार मास के लिए हिमाचल प्रदेश स्थित सोलन में कोई भवन किराए पर ले लिया जाए और वहाँ हर वर्ष पू० महाराज की देखरेख में कैम्प-आश्रम परिचालित किए जाएँ। फलत: वर्ष 1970, 1971, 1972 तथा 1973 में चार बार कैम्पाश्रम आयोजित हुए।*

इन चार में से प्रथम तीन कैम्पाश्रमों में पू० महाराज के साथ रात-दिन रहने का मुझे सु-अवसर मिला। एक बार पू० महाराज अचानक भयंकर रूप से अस्वस्थ हो गए और नाड़ी लुप्तप्राय हो गई। पू० मम्मी जी को लगा कि पू० महाराज का कहीं देहावसान न हो जाए, इसलिए समय रहते उन्होंने मुझे महाराज से अपने लिए कुछ माँग लेने का आग्रह किया। मुझे असमंजस में देख वे स्वयं ही कहनी लगीं —

''महाराज, नौबत आपसे अपने लिए कुछ माँग रहा है।'' उस गम्भीर रात्रि में पू० महाराज तथा मम्मी जी से मुझे जो कृपा-आशीर्वाद मिला, वह आज भी मेरे साथ है। उसी के फलस्वरूप वर्ष 1984 से 1992 के आठ-नौ वर्षों में ट्रस्ट की 19 पुस्तकें — हिन्दी श्री 'म' दर्शन के तृतीय भाग से षोड़श

---

* नूपुर, 1999 के पृष्ठ 65 पर छपा 'सोलन आश्रम से श्री विभूति भूषण डे का पत्र' द्रष्टव्य।

भाग तथा हिन्दी श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के पाँचों भाग — रोहतक से ही छपवाने का सेवाकार्य मुझसे सम्पन्न हो पाया।

वर्ष 1974 में मेरी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महेन्द्रगढ़ में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति हो गई थी और मैं अध्यापन-कार्य के निमित्त हरियाणा के विभिन्न महाविद्यालयों में सेवारत रहा। मुझे निरन्तर यह आभास रहा कि पू० मम्मी जी तथा पू० महाराज मेरी जीवन-डोर सदा पकड़े हुए हैं।

आज भी इन महानात्माओं का वरद हस्त मुझ पर है। आज भी वे मेरा परम कल्याण, परम मङ्गल साधन कर रहे हैं, निश्चित!

●

5

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की तीन दिन की डायरी

— श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

बात उन दिनों की है जब माँ ईश्वरदेवी जी के पति श्री धर्मपाल गुप्ता — 'पापा जी' राजकीय पोस्ट ग्रैजुएट कॉलिज, रोहतक के प्रिंसिपल तथा पंजाब युनिवर्सिटी, रीजनल सेंटर, रोहतक के डायरैक्टर पद पर आसीन थे। सेवानिवृत्ति में उनके केवल चार महीने शेष रह गए थे। 31 अगस्त, 1968 को रिटायर होकर उन्हें अपने चण्डीगढ़ के निवास — 579, सैक्टर 18-बी में आना था।

माँ ईश्वरदेवी गुप्ता अपने पति के साथ सन् 1958 में स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के सम्पर्क में आई थीं। उनकी बातों, उनके विचारों व उनके स्वयं के पालन से मम्मी* इतनी प्रभावित हो गई थीं कि उन्होंने स्वामी जी को सदा-सदा के लिए अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। प्रत्येक कठिन कदम पर उन्हें अपने गुरु का सम्बल व मार्ग-दर्शन मिलता रहा। 12 दिसम्बर सन् 1967 को 'श्री म ट्रस्ट' की स्थापना तथा उसका विधिवत् रजिस्ट्रेशन भी रोहतक में ही हो चुका था; और अब तक वे मनसा-वाचा-कर्मणा, पूरी तरह गुरुनिष्ठ हो चुकी थीं। 'मुमुक्षा' तो भीतर थी ही, गुरु-रूप में 'महापुरुष-संश्रय' भी उन्हें प्राप्त हो चुका था। तो भी गुरु महाराज को लगा कि उनकी सुयोग्य शिष्या को गृहस्थ में रहते हुए ही आध्यात्मिक मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ना है, अतएव तनिक और 'गढ़न' की आवश्यकता है।

---

* श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को मैं 'मम्मी' कहकर बुलाता।

श्रीमती गुप्ता की इस त्रिदिवसीय डायरी से सुस्पष्ट है कि किस तरह उनके गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द अपनी शिष्या को आध्यात्मिक मार्ग पर आगे, और आगे प्रेषित करने को तत्पर हैं। अपने सुघड़ हाथों से वे अपनी शिष्या का कैसे गढ़न करते हैं — बिल्कुल वैसे ही जैसे श्रेष्ठ कवि कबीर लिखते हैं —

''गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ़ गढ़ काढ़े खोट
अन्तर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।''

स्वयं ठाकुर श्रीरामकृष्ण कह गए हैं कि गृहस्थ में रहकर धर्मजीवन-यापन करना है जैसे किले के भीतर रहकर युद्ध करना। गृहस्थ में रहते हुए कभी शरीर साथ देने से इन्कार करेगा, कभी सगे-सम्बन्धी विरोध करेंगे तो कभी कुछ अनजानी, अनदेखी, अप्रत्याशित घटनाएँ-प्रतिघटनाएँ सामने आकर खड़ी हो जाएँगी। पर एक दृढ़ निश्चयी साधक को तो चलना ही है, आगे बढ़ना ही है। यह कैसे हो?

पू० मम्मी जी की यथावत् प्रस्तुत त्रिदिवसीय डायरी प्रत्येक ऐसे साधक के लिए मार्गदर्शन है, प्रेरणा स्रोत है जो 'आगे ईश्वर परे सब' को जीवन में लाना चाहता है ।''

— सं०

ॐ रामकृष्ण शरणम्

Civil Lines
ठाकुर-घर, रोहतक
25-4-68

आज याद आ रहा है महाराज ने 20 तारीख दिन में कहा था — ऐसे स्वप्न लिख कर रख लेने चाहिएँ। उस दिन टाँग में दर्द रहा, कुछ दूसरी चिन्ता थी, मन लिखने को तैयार न था।

हाथ भी थक गया था पूज्य महाराज द्वारा लिखाई VI part बं० (बंगला) श्री म दर्शन की भूमिका लिखकर। गठिया है ना! शक्ति भी गई।

22 को डॉ० Prithvi Singh (पृथ्वी सिंह) मैनी के गई। कार्टीज़ोन ही खाना होगा। मुख फूल जाता है। देखने में स्वस्थ प्रतीत होता है। वैसे

खतरनाक दवा है। दिल पर प्रभाव पड़ता है। किन्तु!

आज महाराज की देहली आराम से पहुँच का पत्र आ गया है। गुड्डी[1] को प्रात: पौने पाँच बजे fit पड़ा है, तो भी मेरा मन शान्त है। अभी-अभी D.P.[2] को पत्र लिख कर चुकी हूँ। पहले एक 'रानी'[3] को भी लिखा था। ईश्वर में मन ले जाने वाले पर अविश्वास होना ही ईश्वर की लीला का दर्शन कराना है।

हाँ, तो 19 तारीख प्रात: D.P. हिसार गए। महाराज सारा दिन डाँटते रहे।

''निष्काम सेवा कहाँ? 'ईश्वर आगे' कहाँ? गुरु-आज्ञा-पालन कहाँ? 'पशु सेवा' है। संसार आगे है। भय आगे है। शरीर के जनों का आदेश मान रहे हो।

''अपनी परम्परा तो देखो! अब कहाँ दिखेगी? ठाकुर पागल, 6 रुपए का पुजारी, होश नहीं, नंगा। उसके बालक चल पड़े उनके कहने पर — कौन बालक? दुनिया के बड़े-बड़े विद्वान, कृती सन्तान, साइन्टिस्ट, critics, playwright, गवैये — साधु बने सब।

''सुना था — छलाँग लगा बेटा — डर मत, नीचे अमृत-सागर है। मार, मार छलाँग। ''माँ और मैं''। तभी पता लगेगा। इस शरीर (गुरु) पर भी भरोसा नहीं होना चाहिए। अपने पैरों पर खड़े हो। स्वतन्त्र कहाँ तुम? श्री म थे। तुम्हारा शरीर आधा भी नहीं। तपस्या नहीं। सख्ती नहीं। economically भी नहीं। 2nd Class रूप में रहना होगा। निर्मला, ज्योत्स्ना, आनन्दमयी माँ, धन्नो! तुम वह नहीं कर सकतीं। मन में जोर नहीं। क्या रह सकती हो? बाहर पेड़ के नीचे पड़ सकती हो? श्री म दर्शन मैं जला दे सकता हूँ यदि 'माँ, ठाकुर'-प्राप्ति में बाधा हो। उस दिन 'office' बनने के दिन कही थी। क्या कही थी? याद है?''

(चुप)

1 मम्मी की सबसे छोटी बेटी, नाम रेणु तथा महाराज का दिया नाम 'मीरा'।

2 मम्मी के पति श्री धर्मपाल गुप्ता

3 मम्मी के जेठ जी की पुत्रवधू

''यह काम यदि निष्काम सेवा में बाधा दे तो छोड़ दो एकदम। निष्काम सेवा माने ईश्वर-प्राप्ति के लिए सेवा — शरीर-सुख, मन-सुख, यश, नाम के लिए नहीं।

''परम्परा कहाँ? तुम कहाँ? स्वामी शिवानन्द सात रुपया किराया न दे सकने पर थाने में रहे। कहाँ शरत महाराज का दफ्तर था — जमीन पर। कोठी के दरबान वाला छोटा कमरा — उसी में सब 'लीला प्रसंग' आदि लिखे गए। वहाँ से ही 'माँ'[1]-सेवा हुई। वहाँ से ही ये आज के मठ-मिशन निकले। वह परम्परा अब कहाँ देखोगी? अच्छा, कहता फिर क्या हूँ? सुन तो रखो। पड़ेगा तो समझोगी। तुम्हें न कहूँ तो किसे कहूँ? याद नहीं, लखनऊ में meeting की proceedings के समय किसी ने इंगित किया था, काम ही कितना है! स्वयं सब काम करने से तब निष्काम ईश्वर-प्राप्ति का कार्य हो, तो हो। उसमें भी रो-रो कर नित्य दुवेला प्रार्थना। दिखा दो माँ! दिखा दो माँ! कह-कहकर। भूल-चूक ज़ोर-ज़ोर से orally बोलकर कहना।

''तो फिर कहाँ रहोगी? रहोगी कहाँ? — यहाँ ही। जैसे वे रखें। बिल्ली के बच्चे की भाँति म्यूँ-म्यूँ करते रहना। 2nd class अवस्था है यह। तो क्या हुआ? ठाकुर जैसे रखें। तो 'छलाँग मार'। हाँ, 'मार न छलाँग'।''

अश्रु-प्रवाह। खूब पिटाई।[2] लगातार तीन दिन — 18, 19, 20। मस्तिष्क में धोखा — उथल-पुथल। कुछ रेखापात — ठाकुर हैं।

''तुम अब अकेली खड़ी रहो। मैं भी, समझो नहीं हूँ। मन होता है, भाग जाऊँ। फिर काली कम्बली वाले की भाँति आऊँ ही न। शरीर चाहे न चले, भीतर का पुरुष अभी जाग्रत है। मैं और ठाकुर।

''लखनऊ में कहाँ रहना? कौन दिखता है? अमृतसर माँ मेरे संग ही जाती है। पीछे कौन बुलाएगा? रखेगी? (कैलाश हो तो। या मीरा! बिमला!) नहीं, कोई नहीं। लखनऊ में विभूति मदद करेगा। गौर भी। ललित का अड्डा पक्का है। ओह! सत्येन वाली भूमि मैं अपने नाम ले लेता।

1 माँ सारदा 2 डाँट

2615 रुपये की केवल। 8000 की एक और है 10 बिस्वा — पर वहाँ कौन रहेगा? वहाँ centre अच्छा बन सकता है।

''विभूति में निष्काम सेवा है। परिवार की की है, तभी ठाकुर जाग रहे हैं। 20-22 जन का इस समय पालन क्या हँसी की बात है? नहीं, तुम्हें देखेगा। कभी-कभी वहाँ चली जाना। उसका घर भी बड़ा है। हाँ, हरण भी देखेगा। मदद 'श्री म दर्शन' की करेगा — अभय। करना चाहता है। दूर है। तुम मिलना — वही करेगा। उसमें है। 12 वर्ष भागा रहा, छिपता रहा किन्तु अब आ गया है।

''हिन्दी-अनुवाद के पश्चात् वह जान गया यह ठाकुर-भाव-शक्ति, बुद्धि-विद्या से नहीं आती — surrender करने से आती है। Complete surrender.

फिर डाँट — कहाँ जाना? मैं और मेरा ठाकुर।

''ये देख, राज, लीला — देहली में सब कुछ है। एक बार भी नहीं कहा, यहीं आकर रहना। अपने बच्चे और दूसरे बच्चों में तफात (फर्क) देखा।

''राज (वर्मा) बिचारी! छोटा घर — तब भी कैसा प्यार! बुलाती है। अपना पिता। यह दूसरे का पिता। यहाँ आन्तरिकता। वहाँ ऐश्वर्य की उपासना। देखा, मैं और मेरा ठाकुर।

''श्री म को दूसरे दिन ही कहा था — मन में जानोगे मेरे ये कोई नहीं — इनका मैं कोई नहीं। मेरा भी ईश्वर है, इनका भी ईश्वर है। बाहर से दिखाओगे न जाने मेरे कितने अपने ये हैं।

''तुम कर सकती हो? जैसा गुरु वैसा चेला। एक बार कहा, बस हो गया। सारा जीवन। तभी तो 300 से 400 संन्यासी तैयार किए। लाखों-लाखों सद्-गृहस्थ बनाए।

''बलराम बाबू की लड़कियों ने अपने-अपने ससुराल बनाए — पूजा-पाठ-मानसिकता लाईं। नियम। स्नान। पूजा सिखाई। सद्-गृहस्थ था रूप में।

''एकान्त तभी है बड़ा दरकार। अपना footing, पता लगता है कहाँ खड़ा हूँ, कहाँ जाना है।''

डाँट — ''कहाँ footing? संसार के जीवों पर भरोसा नहीं रखना — यहाँ तक कि इस पर (अपने शरीर, गुरु-शरीर पर) भी नहीं। केवल ठाकुर।

''मन पसन्द काम न हुआ तो बस चढ़ गया भाव। आज ज़रा खाना न मिला तो बस सर्वनाश। ऐसे नहीं चलता। श्री म दर्शन का काम न हो तो छोड़ देना। बता, छोड़ सकती है? बोल। औरों से काम करवाने से क्या लाभ? — स्वयं सेवा करनी चाहिए।''

श्रोता, लेखिका के अश्रु। मन खराब।

रात्रि दस बजे नौबत गया।

स्वामी जी — मैं चाहता हूँ, भाग जाऊँ काली कम्बली वाले की तरह से। याद नहीं, मंडी में भी एक दिन यह प्राचीन भाव जाग्रत हो गया था — एक साधु को देखकर। अच्छा, जा सो जा — चिन्ता न कर।

''माँ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। माँ-माँ-माँ! अनन्तरूपिणी माँ!...''

ऊठक-बैठक से घुटनों की मचक-मचक का शब्द। निद्रा से जगी। हाथ देख रही हूँ। यह क्या रे? सब स्मरण है — हाथों की हथेलियों के ऊपर-नीचे, सारे शरीर में छोटी-छोटी ट्यूब्ज़ लगी हुई हैं। खूब ठण्डक और शान्ति दे रही हैं। 'रोम कूप' ही 'राम कूप' हैं। ठाकुर की शान्ति-माधुर्य देने वाली ट्यूबस?

स्वामी जी, 19 तारीख रात और 20 प्रात: पौने पाँच के करीब जगी तो देह में सिहर-शान्ति-ठण्ड की लहरें — मार रही थीं। एक बड़ा ही सुन्दर स्वप्न देखा था — कल रात।

स्वामी जी — क्या देखा?

मन्नो जी* — आप कह रहे थे न कि छलाँग मारो। गुरु ने जो कहा — वही देखा!

---

* स्वामी जी 'मम्मी' को 'मन्नो' कहकर बुलाते थे।

''हम चण्डीगढ़ में हैं — परिवार के सब जन तथा अन्य अनेक बैठे हैं। ठाकुर-वार्ता हो रही है। मैं कह रही हूँ — 'गुरुदेव' कहते हैं 'मार छलाँग'। वहाँ दुख का समुद्र नहीं, अमृत का सागर है। मार, मार ना! डर क्या है? गुरु-वाक्य पर विश्वास करके लग पड़ने पर 14-15 आना[2] हो जाता है। मार ना! स्वामी जी ने मारी — गुरु सदा संग-संग रहे। वे सदा देखते रहे। तभी मैंने देखा तीन young लड़कों ने छलाँग लगा दी। मैंने पीछे-पीछे डर के लगा दी। वे जल्दी-जल्दी भागते हुए — लुढ़कते-पुढ़कते जा रहे हैं आगे-आगे। मैं आवाज़ देती हूँ। देखा, वे ठहरते ही नहीं। मस्त। सतत तैलधारावत् जा रहे हैं। मैं भी भागी। अब तो और भी खूब ऊँचाई से छलाँग उन्होंने लगा दी — लग रहा था नीचे आग ही आग है किन्तु उन्होंने परवाह नहीं की। मैंने भी लगा दी डरते-डरते। पहुँच कर बोध हुआ वहाँ अनन्त शान्ति है। आग है परन्तु गर्मी नहीं लग रही। हम झुलस नहीं रहे। मैं तो आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगी। वे तीनों लड़के खुश-खुश खड़े हैं वहाँ ही। उनसे पूछा, ''तुम जले नहीं? तुम्हारा शरीर रगड़ नहीं खाया? इतने ऊबड़-खाबड़ झाड़-झंखाड़, कंकरीले काँटों में से भागे — जले नहीं इस आग में?''

वे हँसते हुए कहने लगे — कहाँ मम्मी! यह देखो। हमें कुछ भी नहीं हुआ।

देखा, उनके हाथों की हथेलियों पर एवं ऊपर, आगे-पीछे सारे शरीर में छोटी-छोटी, नन्हीं-नन्हीं कुछ बल-सी खाती हुई टेढ़ी-मेढ़ी ट्यूबस लगी हुई हैं। वे खूब चमक रही हैं। उन लड़कों ने बताया — जब हमने छलांग लगाई थी, तभी ये झट न जाने कहाँ से बाहर निकल आईं और हमें न अन्धेरा लगा, न डर, न चोट, न जलन। किन्तु खूब आनन्द आ रहा है इस खेल में।

मैंने अपने शरीर में देखा — वहाँ भी वैसी ही चमकदार, नन्हीं-नन्हीं, कुछ झुकी हुईं, टेढ़ी-बलखाती ट्यूबस निकली हुई थीं हाथ की हथेलियों में ऊपर-नीचे, सारे शरीर में।

तभी आँख खुली — कान में मचक-मचक, टिक-टिक का शब्द

---

* एक रुपया = 16 आने।

हुआ। आप exercise कर रहे थे। साथ में ठाकुर-नाम।

''वही विश्वास रूप लेकर आया दिखाने कि लगा छलाँग, ठाकुर संग हैं। सब प्रबन्ध पहले से होकर रखा है। चिन्ता क्या? ईश्वर-प्राप्ति में लग जा।''

लिखकर रख लेना चाहिए। पीछे काम आती है विश्वास के लिए।

प्रस्तुति : नौबतराम भारद्वाज

6
ज्वलन्त विश्वास और जबरदस्त इच्छा शक्ति

— डॉ० हरविनोद जिन्दल

डॉ० जिन्दल का श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता के साथ बहुत पुराना परिचय है। ये डॉ० जिन्दल रामकृष्ण मिशन-आश्रम में तो आते ही हैं; श्री म ट्रस्ट, 579, 18-बी में भी आते हैं। साथ ही श्री म ट्रस्ट के मन्दिर, श्री पीठ (19 सैक्टर), में भी ट्रस्ट के समारोहों में ये अपनी पत्नी सरोज जी के साथ प्राय: उपस्थित रहते हैं। यहाँ पर हम डॉ० जिन्दल की दो विभिन्न प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। एक जो उन्होंने 9 अप्रैल, 1986 में दी थी (यह नूपुर-1994* में प्रकाशित हुई थीं)। और दूसरी जिसे उन्होंने 15 दिसम्बर, 2015 को डॉ० निर्मल मित्तल को सुनाया। इस दूसरी प्रतिक्रिया को डॉ० निर्मल मित्तल ने लिपिबद्ध किया है।

— सं०

-1-

Wednesday, April 9th, 1986

Only with His grace, as I got admission in Govt. College for Boys at Chandigarh in 1960, was

---

* 1994 में स्वामी नित्यात्मानन्द के 101वें जन्मदिवस पर स्मारिका रूप में वार्षिक पत्रिका के रूप में 'नूपुर' आरम्भ किया गया था।

admitted in Swami Vivekananda Students' Home in Sector 15-B. Swami Mukhyanandaji Maharaj was the warden. Wednesday religious classes and sadhu-sang had been the great privileges, though for lunch, breakfast, dinner we used to go to Govt. College mess and canteen. Later on, the mess and Students' Home was started. Swami Tattwajnananda ji Maharaj was the warden Swamiji. As I spent time here, I didn't want to leave this place and wanted to have company for long and wanted to join University and to adopt teaching profession. But as I got admission in Medical College, Amritsar, I went there but could not forget Chandigarh. I still had association with Swamiji.

In 1967, I could meet Swami Nityatmananda ji Maharaj first in Amritsar and then at Chandigarh. In between I also met with Swami Shastrananda ji, Swami Shantimayananda ji.

Whenever I come to Chandigarh, I visit place (Sri Ma Trust) with His Grace, something is exchanged which cannot be put into words.

To reach the religious and spiritual side, my respected Prof. J.L. Bhatia, his family and Mrs. I.D. Gupta ji have been great vehicles.

Dr. Harvinod Jindal,
Chandigarh.

-2-

सन् 1967 की बात है। मैं अमृतसर के medical college में पढ़ता था। Final year का student था। वहाँ होस्टल से मुझे पता चला कि

मि० वधवा जी के घर कोई स्वामी जी आए हुए हैं। स्वामी जी लोगों से मिलना मुझे अच्छा लगता। मैं मि० वधवा के घर चला गया। मालूम हुआ ये स्वामी नित्यत्मानन्द जी महाराज हैं। उनसे थोड़ी बातचीत हुई। मैं चण्डीगढ़-आश्रम के hostel में मैं रहता था, यह भी उन्हें बताया। सुनकर वे प्रसन्न हुए। उन्हीं से मालूम हुआ कि वे चण्डीगढ़ में मकान नं. 579, सैक्टर 18-बी में ठहरते हैं। एक बार मैंने उन्हें अमृतसर मेडिकल hospital के waiting room में भी देखा। मिसेज़ आई.डी. गुप्ता (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) का कोई ऑप्रेशन हो रहा था। ये महाराज उन्हीं के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैं अमृतसर से चण्डीगढ़ जब भी आता, आश्रम तो जाता ही। एक दिन मैं स्वामी जी से मिलने सैक्टर-18 पहुँच गया। यहीं मेरी भेंट मिसेज़ आई.डी. गुप्ता से हुई। अब मैं कभी-कभी यहाँ भी आने लगा। बातें होतीं मिसेज़ आई.डी. गुप्ता से। ये मुझे अपने और स्वामी जी के बारे में बहुत कुछ बताती रहतीं।

एक दिन बोलीं, ''स्वामी जी ऋषिकेश के तुलसी-मठ में रहते हुए श्री म दर्शन-लेखन कार्य करते रहते, उन्होंने श्री म को पकड़ा है। श्री म दर्शन में सब ठाकुर की ही बातें हैं। ये समस्त बातें मनुष्य के मन को ऊपर उठाती हैं।''

ये तथा अन्य और भी बातें श्रीमती आई.डी. गुप्ता ने मुझे बताईं और श्री म दर्शन भाग-I की एक प्रति मुझे थमा दी। उस समय शायद 10 रुपए इसकी कीमत थी। बाद में अंग्रेज़ी-'श्री म दर्शन' भी दिया था उन्होंने। मैंने ये पुस्तकें तो अधिक नहीं पढ़ीं, बस इन्हीं मिसेज़ आई.डी. गुप्ता के मुख से सुनता रहता। इन पुस्तकों में जो है, ये बताती रहतीं।

रामकृष्ण मिशन-आश्रम में उस समय स्वामी तत्त्वज्ञानन्द जी बोर्डिंग के वार्डन थे। उनसे जाकर बताता कि मैं स्वामी नित्यात्मानन्द जी से और श्रीमती आई.डी. गुप्ता से मिल कर आया हूँ। वे बहुत खुश होते।

एक बार मैं ऐसे ही मिसेज़ आई.डी. गुप्ता से मिलने गया तो उन्होंने

मुझे रोक लिया और स्वामी नित्यात्माननद जी के पास भेज दिया। कहने लगीं — उनसे जाकर पूछो कि मैं क्या करूँ? स्वामी जी अपने कमरे के बाहर ही बैठे थे। सायं 4-5 का समय था। स्वामी जी ने मुझसे मेरे बारे में सब कुछ पूछा। फिर मुझे मन्त्र दिया। मैं मिसेज़ आई.डी. गुप्ता के पास दोबारा आया। वे बोलीं — मन्त्र लिया है, गुरु को कुछ दक्षिणा देनी चाहिए। मेरे पास दस रुपए का नोट था। मैंने वही जाकर स्वामी जी को दे दिया। यह सन् 1974 की बात है।

उन दिनों मैं फरीदकोट ज़िले में Medical Officer था। 1975 में गुरदासपुर आ गया। यहाँ मैं district TB-cum-Leprosy Officer था। Official duty पर ही कभी-कभी चण्डीगढ़ आता। मिसेज़ आई.डी. गुप्ता के पास मेरा address था फरीदकोट का, गुरदासपुर का नहीं। जुलाई, 1975 में स्वामी जी का शरीर शान्त हो गया है, इस बात का मुझे पता न चला। बाद में official visit पर चण्डीगढ़ आया, तभी मुझे इस बात का पता चला। बहुत दुःख हुआ।

सन् 1976-77 में मिसेज़ आई.डी. गुप्ता सैक्टर 19 में मन्दिर बनवा रही थीं — श्री पीठ। लोग पूछते — आप मन्दिर क्यों बनवा रही हैं? वे कहतीं — गली-गली में मन्दिर है। मैं भी बनवा रही हूँ।

फिर बतातीं — यह जगह, जहाँ मन्दिर बन रहा है, बहुत अच्छी है। स्वामी जी ने बताया था — ''यहाँ पहले एक सड़क थी — कच्ची-पक्की। उस पर से होकर साधु लोग मनसा देवी जाया करते थे।''

यह वही स्थान है जहाँ अब मन्दिर बन रहा है। तो यह बहुत अच्छी जगह है, बहुत पवित्र जगह है। वे मन्दिर के लिए दान माँगतीं तो कहतीं — ''बस, एक रुपया दो। मेरी एक ईंट आ जाएगी।'' मैंने उन्हें कभी भी किसी से ज्यादा पैसे माँगते नहीं देखा।''

मेरी शादी हुई 1980 में चण्डीगढ़ में ही। मिसेज आई.डी. आईं शादी में। सन् 1996 में मेरी posting चण्डीगढ़ में ही हो गई — Punjab Health Systems Corporation में। फिर मुझे सुविधा हो गई। मैं आश्रम तो जाता

ही, कभी-कभी ट्रस्ट में भी जाता।

दोनों जगह से मुझे एक ही शिक्षा मिली, ''Socialisation से बचो। आश्रम जाते हो, अच्छा है। वहाँ spiritual atmosphere है। वहाँ जाकर इधर-उधर का विचार भी मन में नहीं लाना, अखबार भी नहीं। Spiritual thought में ही रहो।''

एक-दो बातें और भी हैं जिन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता। एक तो यह कि स्वामी नित्यात्मानन्द जी से दीक्षा के बाद मैं उनसे 1-2 बार ही मिल पाया। वे जानते थे मैं busy रहता हूँ। उन्होंने मुझे कहा था, ''There is no bondage of time, जब भी समय हो, मन्त्र-जप कर लेना। और जब भी मन हो, मन्त्र-जप कर लेना।''

स्वामी जी की इस बात ने मुझे free कर दिया।

फिर कई बार मन में होता — यहाँ आश्रम में ठाकुर और विवेकानन्द की बात होती है, मिसेज़ आई.डी. ठाकुर और श्री म की ही बात करती हैं। कभी-कभी थोड़ा confusion होता।

एक दिन दोपहर का समय। स्वामी नित्यबुद्धानन्द जी और होस्टल के incharge स्वामी शिवसेवानन्द जी बैठे थे आश्रम होस्टल के लॉन में। मुझे देख स्वामी शिवसेवानन्द जी अपनी उंगली ऊपर उठाते हुए बोले, ''एक ही हैं। ठाकुर एक ही हैं। जहाँ भी जाओ, ठाकुर एक हैं। यहाँ भी ठाकुर हैं, वहाँ भी ठाकुर हैं। तब कहीं जाकर मेरे मन का confusion दूर हुआ।''

और अब मिसेज़ आई.डी. की बात। मैं जब भी इनके पास आता, देखता ठाकुर की बात करते ही इनकी आँखों में आँसू आ जाते। मैं हैरान होता — ठाकुर की बातें करते-करते ये रोती क्यों हैं ?

आज मुझे समझ आ रहा है — ठाकुर के नाम से जिसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं, इसका मतलब है वह भगवान में डूबा हुआ है।

फिर डॉक्टर होने के नाते मैं जानता था मिसेज़ आई.डी. का स्वास्थ्य कैसा रहता है, मैं जानता था जिसका अल्सरेटिव कोलाईटस का इतना बड़ा

ऑप्रेशन हो चुका हो और टट्टी का रास्ता बन्द कर के पेट के एक ओर स्टोमा बना हो, उसके साथ थैली बन्धी हो और बार-बार मल की उस थैली को साफ करना, उसे बदलना पड़ता हो, उस patient की क्या हालत होती है! और मिसेज़ आई.डी. गुप्ता तो इसके इलावा भी अन्य रोगों से ग्रस्त रहती हैं। तो भी ये इतना कठोर परिश्रम कैसे कर लेती हैं, सोचकर मैं हैरान होता! ये श्री म दर्शन के 16 भाग, कथामृत के पाँच भाग हिन्दी में अनुवाद कर पाईं, साथ ही स्वामी जी महाराज की सेवा, ट्रस्ट के इतने काम — यह सब कर पाईं, इसे देख मेरी अक्ल हैरान हो जाती। ये कहतीं , ''ठाकुर ने जिससे जो करवाना होता है, करवा लेते हैं। शक्ति भी वे ही देते हैं।''

मैं समझा हूँ कि मिसेज़ आई.डी. गुप्ता का यह ज्वलन्त विश्वास और उनकी जबरदस्त will power, इच्छा शक्ति ही थी जिसने उनसे इतना सब करवा लिया।

•

7

मंज़िल उसे मिली जिसे रहनुमा मिला

— श्रीमती निर्मला कालिया

श्रीमती निर्मला कालिया 'मम्मी'[1] से पहली बार मिलीं सन् 1978 में। लेकिन उनके पति 'माता जी'[2] से उनसे पहले ही मिल लिए थे 1976 में। पति के मुख से 'माई ईश्वरी'[3] की बातें, उनकी प्रशंसा सुन-सुन कर निर्मला जी 'मम्मी' से मिलने को लालायित हुईं। मिलने के पश्चात् उनकी ओर निर्मला जी का मन इतना आकृष्ट हो गया कि वे बार-बार उनसे मिलने आतीं। फिर तो वे 'मम्मी' से ऐसी प्रभावित हुईं कि वे उन्हीं की होकर रह गईं। निजी आकर्षण व 'मम्मी' की निरन्तर प्रेरणा के कारण वे बरसों उन्हीं के पास रहीं उन्हीं के घर 579, सैक्टर-18 बी, चण्डीगढ़ में। 'मम्मी' के देहावसान के बाद भी उन्हीं के घर रहीं पूरी जिम्मेवारी के साथ।

निर्मला जी ने बताया कि उनको कभी लगा ही नहीं कि 'मम्मी' चली गई हैं। निर्मला जी को उनकी presence (उपस्थिति) हमेशा महसूस होती रही। आज भी वे उन्हीं के साथ रह रही हैं; यह अलग बात है कि इधर कुछ महीनों से वे अपने वृद्ध शरीर और बीमारी के कारण अपने बेटों के पास जालन्धर में हैं। पर आत्मा उनकी पड़ी है यहीं 'मम्मी' के घर — 579, सैक्टर 18बी, चण्डीगढ़ में।

---

1 निर्मला कालिया जी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को 'मम्मी/माताजी' कहतीं।

2 कालिया साहब उन्हें 'माताजी' कहते।

3 बात करते समय वे उन्हें 'माई ईश्वरी' कहते।

ठाकुर कहते हैं, ''एक हाथ से जगत् के सभी कार्य करो और दूसरे हाथ से ईश्वर को पकड़े रखो। समय आने पर दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लो।''

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के संग रहते-रहते निर्मला कालिया जी एवं उनके पति का भी ऐसा ही हो गया था। तभी तो रिटायर होने के बाद दोनों जनों के लिए हो गया — 'आगे ईश्वर परे सब' और दोनों ने दोनों हाथों से ईश्वर को पकड़ लिया। ईश्वर-परायणा हो गईं अपनी 'उत्तम' गुरु ईश्वरदेवी गुप्ता जी की प्रेरणा, उनके निरन्तर प्रयास से ही वे ऐसा कर पाए।

प्रस्तुत है श्रीमती निर्मला कालिया के संस्मरण :

— सं०

मेरे पति कालिया साहब मुझसे भी दो बरस पहले मिले थे माता जी से श्री पीठ में। ये पहले रहते थे सैक्टर 21-डी में मेरे भाई के साथ। बाद में सरकारी मकान मिल गया। तब रहने लगे सैक्टर 20 में। दफ्तर था सैक्टर 9 में। दफ्तर आते-जाते देखा था माता जी को श्री पीठ में। उन्हें कई बार सड़क पार करवा देते। बातचीत भी हो जाती। दो साल बाद मैं उनसे मिली। तब तक मम्मी से उनका लगाव हो चुका था। माता जी को मिलने से पहले कालिया साहब कई साधुओं से मिलते रहते जालंधर[1] में, पर कोई पसन्द न आया। कई साधुओं से मिले पर अन्दर कोई घुसा नहीं।

कालिया साहब जब माता जी से मिले तो धीरे-धीरे माता जी के लिए, उनके मन में बड़ा आदर हो गया। कहते, ''इक चीज़ लब्भी है, बड़ी वधिया (एक अति सुन्दर चीज़ मिली है मुझे)।'' पहली बार जब ये श्री पीठ में मिले माता जी से, तो माता जी ने कहा, ''कोई भजन सुना ठाकुर को।'' ये बोले, ''वह तो मैं जानता नहीं। हाँ, मेरे चाचा शायर थे। मैं 'शेर' सुना सकता हूँ।'' माता जी बोलीं, ''हाँ, हाँ, सुनाओ। ठाकुर वह भी सुनते हैं।'' तो 'शेर' सुनाया—

मंज़िल को ढूँढना है तो रहनुमा को ढूँढ
मंज़िल उसे मिली जिसे रहनुमा मिला।''

मम्मी खुश! उन्होंने यह 'शेर' लिख कर रख लिया। बोली थीं,

1 कालिया साहब का पैतृक निवास।

''देखो, इसके अन्दर का भाव देखो।''

फिर जब हम सैक्टर 20 के अपने सरकारी मकान में आ गए तो यहाँ से मन्दिर नज़दीक था। सो रोज़ शाम को मन्दिर आना-जाना शुरु। ईश्वरदेवी गुप्ता (मम्मी/माता जी) को ये 'माई ईश्वरी' कहते। इन्हें रोज़-रोज़ मन्दिर जाते देख मेरे मन में आया , ''इन्हें तो कभी कोई साधु, कोई सत्संग भाया नहीं तो ऐसा क्या है इन 'माई ईश्वरी' में, जो ये रोज़-रोज़ उनके पास जाते हैं।''

एक दिन मैं भी मिलने आ गई मम्मी से इनके साथ सैक्टर-18* में उनके घर। मम्मी बैठी थीं तख्तपोश पर। मेरी ओर उंगली करते हुए कालिया जी उनसे बोले, ''माता जी, यह भक्तनी है पर मैं कुछ नहीं जानता। सो इसे आपके पास लाया हूँ।'' और सच पूछो तो मेरी कोई भक्ति नहीं। बस जालन्धर में घर वालों की सेवा ही अपना कर्त्तव्य समझती। भरे-पूरे परिवार का, संयुक्त परिवार का काम, मुझे कोई फुर्सत ही न थी।

तो भी मम्मी के प्रति मन में आकर्षण हो गया। उनके पास बैठने को मन होता। फिर यह रूटीन ही हो गया। घर के काम खत्म किए और प्रात: दस-साढ़े दस मम्मी के पास पहुँच जाती 18 में। घर में जो काम देखती, कर देती। दोपहर का खाना मैं यहीं खाती। कभी डिब्बे में ले आती, कभी नहीं। फिर शाम को यहीं से मन्दिर में चली जाती मम्मी के साथ 19 में। कालिया साहब भी दफ्तर से वहीं पहुँच जाते। सब मिलकर पूजा करते। पूजा के बाद भी कई बार मम्मी वहीं बैठी रहतीं। जो भी वहाँ आता, उसे भी बिठा लेतीं। बातें करतीं, समझाती रहतीं। कई बार बैठे-बैठे दस भी बज जाते रात के। पापा ढूँढने आते। कहते, ''अब चलो, दस बज गए हैं।'' मम्मी को कोई होश नहीं। उनका ध्यान सिवाय ठाकुर के किसी में भी नहीं। खाने-पीने की चिन्ता नहीं।

हम रात के खाने के लिए अपने घर चले जाते 20 सैक्टर। खाना खाया और ये कहते, ''चल 18 माता जी के पास।'' ये रह नहीं सकते थे मम्मी के

---

* गुप्ता जी व मम्मी का निवास स्थल — 579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़।

बिना। दोनों की बातें होतीं। मैं सुनती रहती। यही मेरा सत्संग था।

मैंने मम्मी के शरीर की सेवा पकड़ ली। कभी सिर की मालिश कर दी, कभी पीठ की। ऐसे ही प्यार बढ़ता गया। मेरे पति मिले थे 1976 में मम्मी से और रिटायर हुए 1988 में। तब तक जीवन का यही रूटीन चलता रहा।

कालिया साहब रिटायर हो गए तब दोनों बेटे जालन्धर से गाड़ियाँ लेकर आ गए अपने माता-पिता को ले जाने के लिए। पर मम्मी ने पहले से ही कुछ और सोच रखा था। उन्होंने कालिया साहब से पूछा, ''बोल, तेरी मंशा क्या है?''

वे बोले, ''मेरी मंशा क्या? बच्चे आए हैं लेने। जाना ही होगा।''

वे बोलीं *(मेरी ओर इशारा करके)*, ''मैं इसकी पूछ रही हूँ। इसके बारे में तेरा क्या ख्याल है? इसे जिन्दा देखना चाहता है या चाहता है यह मर जाए? देखो, वहाँ जाकर तुम दोनों नौकर बन जाओगे।''

मेरे मन में आया, ''यहाँ भी तो वही कर रही हूँ। तो बच्चों के लिए यही काम करना क्या नौकर होना हो गया?''

मन में तो आया पर समझी कुछ नहीं।

मैंने कुछ कहा भी नहीं।

फिर बोलीं, ''अभी तो छः महीने क्वार्टर है ना? अभी यहीं रहो।''

कालिया साहब मान गए।

पहले भी मम्मी अपनी लाठी (जिसके सहारे से वे चलती थीं) ले हमारे घर चली आती थीं कभी-कभी। पर अब और ज्यादा आने लगीं। अपनी छोटी बेटी गुड्डी को भेज देतीं हमारे घर। उसे हमारे यहाँ आकर मज़ा आता। कारण वह जो चाहती, बना कर देती उसे।

इसी तरह छः महीने बीत गए। बच्चे फिर आ गए हमें लेने। आना ही था।

कालिया जी बोले, ''माता जी! अब तो हम एक-दो दिन में चले जाएँगे।''

माताजी, ''देख लो भई, तुम्हारी मर्ज़ी। मुझे तो जो कहना था, कह दिया।''

पहली बार जब बच्चे आए थे लेने तो माता जी ने कहा था, ''सामान बच्चों के हाथ भिजवा दो। क्या करना है? बस चार बर्तन रखो और दो बिस्तर।'' हमने भी ऐसा ही किया था। सो अब बस चार बर्तन और दो बिस्तर ही थे।

इधर मम्मी ने जब देखा कि बच्चे आ चुके हैं लेने तो सेवक सुरेशानन्द को भेज दिया हमारे पास, हमारे घर। वह बोला, ''माता जी कहती हैं, मेरे पास दो चारपाइयाँ हैं। महाराज वाले कमरे खाली हैं।* अपने दो बिस्तर और चार बर्तन लेकर आ जाना और यहीं रह लेना।''

मम्मी ने देख लिया था हमारा जीवन पवित्र है। पति-पत्नी वाली कोई बात नहीं। तभी उन्होंने हमें महाराज वाला कमरा देने की बात सोची। वे कहती थीं, ''यह कमरा पवित्र रहे। मुझे यह कमरा किसी किरायेदार को नहीं देना है।''

दरअसल सन् 1961 में 38 वर्ष की उम्र में मेरे जेठ जी पाँच बच्चों को छोड़कर स्वर्ग सिधार गए थे। हम अपने दो बच्चों के साथ इन्हें भी पालते रहे। उसी समय कालिया साहब ने निश्चय किया था , ''मेरी गृहस्थी अब खत्म। मैं तो अब सात बच्चों का बाप हो गया।''

बाद में जेठानी को पढ़ाया, हमने मिलकर बच्चे पढ़ाए। जेठानी Adult क्लास में पढ़ीं। मैं भी पढ़ने लगी। आठवीं की परीक्षा दी। फिर दसवीं की। जेठानी ने जेबीटी कर ली। फिर उनकी सरकारी स्कूल में नौकरी लग गई। बच्चों के पालन-पोषण में, उनकी पढ़ाई में थोड़ी सहायता हो गई।

---

* मम्मी ने अपने घर में गैरज वाली ओर महाराज — स्वामी नित्यात्मानन्द के लिए दो कमरे और एक शौचालय बनवा दिया था।

इधर मेरे सास-ससुर बीमार पड़ गए। उनकी सेवा का कार्य। फिर कालिया साहब की एक विधवा बुआ थी। उनकी भी सेवा। सो मैंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी।

सो हमारा पवित्र जीवन देख कर ही मम्मी ने सुरेशानन्द के हाथ कहलवाया था, ''उनसे कहना महाराज वाले कमरे में रह लें। और न मानें तो कहना सामान यहाँ भिजवा दो। आप बेशक चले जाओ। जब मन करे, आ जाना।'' साथ ही सुरेशानन्द के हाथ रेहड़ी भी भेज दी। अब हम क्या करते? कालिया जी मम्मी को 'ना' नहीं कह सके। सो सामान भेज दिया।

और जाने से पहले मम्मी से मिलने आ गए 18 में। बेटे हमारे साथ थे। मम्मी ने बेटों की खूब आवभगत की। थोड़ी देर रुक कर हम जालंधर आ गए।

हमें आए अभी कुछ ही दिन हुए थे कि मम्मी की चिट्ठियाँ आनी शुरु हो गईं। उनमें घर-गृहस्थी की कोई बात नहीं। सब ज्ञान की बातें। उन बातों का प्रभाव पड़ा और आखिर हम दोनों आ गए।

वापिस आकर हम यहीं स्वामी जी वाले कमरे में रहने लगे। इसके बाद से मैं तो यहीं रही। कालिया साहब जालन्धर आते-जाते रहते। कभी-कभार मैं भी चली जाती उनके साथ। यहाँ अपना खाना अलग बनाती पर हम खाते इकट्ठे एक ही मेज़ पर, मम्मी के पास। आनन्द में समय बीत रहा था।

हमने अपनी पूजा महाराज वाले कमरे में ही शुरु कर दी। यहीं हमने सीखा नियम से पूजा करना। सुबह की चाय मम्मी को मैं ही बनाकर देती। थोड़ा-बहुत काम करती। उन्हें नाश्ता खिलाती। फिर अपने कमरे में जाकर अपना नाश्ता बनाती। तब तक सुरेशानन्द आ जाता था 19 मन्दिर की सफ़ाई, वहाँ की धूप-बत्ती करने के बाद।

मेरे पति कालिया साहब शुरु में अकेले ही आए थे चण्डीगढ़ 1966-67 में। मैं आई थी बाद में 1975 में।

मम्मी बोलती रहतीं, मैं सुनती रहती — यही मेरा सत्संग होता।

उनकी सेवा में लगी रहती। उनकी बातें अच्छी लगतीं। कई बार तो रात का एक बज जाता। तो भी मन करता उनके पास ही बैठी रहूँ। कभी डाँटती तो उस डाँट में भी मुझे उनका प्यार ही नज़र आता। वे मुझे सुनातीं ठाकुर, श्री म व स्वामी नित्यात्मानन्द के जीवन की बातें। कहतीं — हमारे गुरु ठाकुर ही हैं। मन से भले ही वे महाराज को मानतीं पर कहतीं — ''मनुष्य गुरु नहीं हो सकता। ठाकुर ही हैं हम सबके गुरु।'' स्वयं को भी उन्होंने 'गुरु' नहीं माना। कहतीं, ''बस, मैं तुम्हारी दीदी हूँ। तुम्हारे भीतर भी कुछ रोशनी हो, तुम्हें भी ठाकुर का रास्ता मिले, इसी का प्रयास करना मेरा कर्तव्य है।''

उनका अपना स्वास्थ्य कुछ अच्छा न था। उन्हें खूनी दस्त आते। लगभग 1960 से उनका खाना था - प्रात: और रात दही और केला (भुना केला), दोपहर को दही-खिचड़ी, शाम को नींबू वाली चाय और दो नमकीन बिस्कुट।

16 जनवरी, 1994 को कालिया साहब का शरीर चला गया जालन्धर में ही। वे कहा करते, मैं ठाकुर से तीन बातें माँगता हूँ —

1. मेरा शरीर जालन्धर वाले घर में शान्त हो। मैं तेरे से पहले जाऊँ। मेरी किसी से नहीं बनती। पर तू बनाकर रख लेगी।
2. मैं जब जाऊँ, मेरे दोनों बेटे मेरे पास हों, मेरे सामने।
3. मैं किसी से भी पानी तक न माँगूं। मेरा शरीर अन्त तक चलता रहे।

उनका मोह अभी भी पूरा था, बच्चों में। तभी ऐसा कहते। तभी वे 10-15 दिन में एक बार चले आते जालन्धर, बच्चों से मिलने। अन्त में गए तो वहीं रह गए। उनकी इच्छा पूरी हुई।

उस समय मैं जालन्धर रही दो-तीन महीने। तब मम्मी ने डॉ० विमला (मम्मी की ही एक भक्त) को भेजा यह कहकर, ''जा, उसे उस कीचड़ से निकाल कर ले आ।'' विमला जी 2-3 दिन मेरे पास रहीं। तब बोलीं, ''मैं तो आप को वापिस लेने आई हूँ। चलो, मम्मी ने बुलाया है।'' तब मन में आया, ''हाँ, मेरी गुरु तो वे ही हैं।'' मैं विमला जी के साथ लौट आई मम्मी के पास।

आते ही खूब रोई मम्मी की गोद में सिर रखकर। पूछा, ''बोलो मम्मी, मेरे पति गए क्यों?''

उत्तर मिला, ''उसकी तीनों बातें जो पूरी होनी थीं।''

अब मम्मी ने मुझे अलग नहीं रहने दिया। खाना-पीना, सोना सब मम्मी के साथ चलता रहा। वे ऐसा बर्ताव करतीं जिससे मेरे मन को शान्ति हो। उनके पास 'कथामृत' लेकर बैठ जाती। पढ़ती। मुझे कहतीं, ''देख, तुझे अब कालिया की duty भी देनी है।'' सो बीच-बीच में बच्चों के पास भेज देतीं।

मम्मी के पास दिन भर मेला लगा रहता। लोग आते-जाते रहते। सबको वे श्री म की बातें बतातीं। कहतीं, ''साधु होते हैं चढ़ते सूर्य। हम गृहस्थी उधर देख भी नहीं सकते। श्री म को लो। उनका जीवन है बिल्कुल हमारे जैसा। विश्वास होता है अपने जैसों पर। जैसे श्री म उठे, वैसे हम भी उठ सकते हैं।''

मैं सोचती मम्मी को मिले स्वामी नित्यात्मानन्द। मुझे मिलीं गुरु रूप में मम्मी। हमारे घर में स्त्रियाँ पुरुषों के पास बैठती ही नहीं थीं। तभी ऐसा हुआ।

वे कहतीं, ''गुरु को दिन में देखो, रात में देखो, महीनों देखो, सालों देखो। जब मन में पूरा बैठ जाए तो उस पर विश्वास करो।'' मैंने मम्मी को सालों देखा। मन में विश्वास हो गया कि ये ही मेरी गुरु हैं। मुझे जो मिलेगा, यहीं से मिलेगा। इनके पास रहते हुए, इनकी सेवा में मन को शान्ति रहती। कभी गुस्सा होतीं तो कह देती, ''जा, चली जा अपने बच्चों के पास।'' मैं कह देती, ''नहीं जाती, निकाल कर दिखाओ।'' बस फिर हँस देतीं। उनके मन में कुछ था ही नहीं।

'गुरुः ब्रह्मा, गुरुः विष्णुः' की बात पर मुझे पूरा विश्वास है। वह परम शक्ति, इस मनुष्य-शरीर गुरु से सब करवा लेती है।

मम्मी के अन्तिम दिनों में उनकी सेवा करती तो लगता साक्षात् भगवान

की सेवा हो रही है। मैंने अन्त तक उन्हें खुश ही देखा। दु:ख में भी बोलतीं, ''ठाकुर! ठाकुर!'' उन्होंने बोलना लगभग बन्द कर दिया था। सोते-सोते अचानक आँखें खोलतीं तो मैं पूछती, ''मम्मी! कहाँ की सैर करके आई हो?'' उत्तर में वे केवल मुस्कुरा देतीं।

मम्मी कहतीं, ''अन्त में ठाकुर आते हैं लेने।'' विनय (एक भक्त) उस समय मम्मी की सेवा में था। उसे हुए एकदम ठाकुर के दर्शन। वह मम्मी के साथ चिपक कर रोया। बोला, ''बस अब मम्मी नहीं रहेंगी।''

26 मई, 2002 को उनका शरीर शान्त हो गया। उस दिन बुद्ध पूर्णिमा थी। आज भी उनकी आत्मा यहीं है श्री पीठ में 19 वाले मन्दिर में। मन्दिर के सामने सुदर्शन रहती थी। वह दोनों समय मन्दिर में धूप-बत्ती करती। उसने बताया, ''अचानक मन्दिर के दरवाज़े की ज़ोर से आवाज़ हुई जैसे किसी ने दरवाज़ा तोड़ा है। मैं शर्मा जी (पति) को लेकर भागकर गई। देखा, वहाँ तो कुछ भी नहीं।'' बाद में पता चला यह वही समय था जब मम्मी ने प्राण त्यागे थे। अर्थात् अब मम्मी वहीं हैं, श्री पीठ में।

मन्दिर में जहाँ मम्मी बैठा करतीं, आज भी उनका आसन वैसे ही वहीं बिछता है। आसन पर उनके स्थान पर रखा फूल उनके होने का अहसास दिलाता है। वे कहा भी करतीं, ''मरने के बाद मैं वहीं श्री पीठ में जाकर बैठ जाऊँगी।'' घर पर यानि 579, 18बी में भी वे हैं। वर्ना, उनके बिना मैं इस घर में कैसे रहती? उन्हें गए 12-13 साल हो चले पर आज भी इस घर में मुझे अकेले रहते भी कभी डर नहीं लगा।

— प्रस्तुति : डॉ० निर्मल मित्तल

अपने 'सबको सम्मति दे भगवान' नामक लेख में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता कहती हैं कि श्री म ने स्वामी नित्यात्मानन्द जैसे सैकड़ों संन्यासी तथा सहस्रों गृही व अन्य अनेक भक्तों को प्रमुखतया निम्नांकित चार तत्त्व सिखाए : —

(1) सुख-दु:खमय इस संसार में रहकर वेदवर्णित शान्तिमय जीवन-यापन।

(2) वन के वेदान्त को घर में लाकर गृहस्थ जीवन को वास्तविक आश्रम व्यवस्था के अनुरूप जीना।

(3) निष्काम तथा नि:स्वार्थ सेवाभाव का अभ्यास करना।

(4) भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य में न भुलाने के लिए प्रभु से निरन्तर प्रार्थना ।

— नूपुर 1994, पृष्ठ 45

8

Love and Chastisement

— Sandeep Nangia

14 वर्ष की किशोरावस्था से ही श्री सन्दीप नांगिया का श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता के साथ परिचय है। माताजी, श्रीमती गुप्ता ने एक सुयोग्य गुरु के रूप में सन्दीप जी के संस्कारों का परिष्कार कैसे किया, कैसे उनका मार्गदर्शन किया, देखते हैं। विशेषत: संस्कृत में उनकी रुचि बनी रहे, इसके लिये श्रीमती गुप्ता ने हर सम्भव प्रयत्न किया।

— सं०

I and Praveen Sapra were classmates and good friends. Later, I changed school and the contact with him became quite less. But somewhere in 1985 or 1986, we started meeting again occasionally. Praveen's mother used to do a lot of *Gāyatrī japa* and was interested in Arya Samaja as well. Once Praveen gave me a book on meditation which had excerpts from Swami Vivekananda's talks. That kindled my interest in spiritual things and from thereon we used to meet and talk often. Thus, arose a desire to be part of some spiritual community.

While going back and forth to Praveen's home (in Sector 19, Chandigarh) from my home in Sector 20, Chandigarh, I would often see the building of Sri Sri Ramakrishna

Kathamarita Peeth (Sri Peeth) and wonder what was in it. But, I did not have the courage to go in and enquire. One day, I noticed the 'Library' sign on the building. That sparked an idea in me that we can go and ask about the library. Consequently, somewhere on an evening in early June 1986, Praveen and I decided to go in and enquire about it. However, I was a bit scared and my entire focus was to get some toehold based on that 'Library' sign.

Sri Peeth has a meditation hall and we went up to that. I don't remember seeing anything else but Mataji sitting and saying something. I just interrupted her and blurted out my enquiry about the library. I now realized that I had disturbed a discourse that Mataji was giving to a few people sitting there. Mataji replied somewhat curtly, 'The library is in-operational and there is no arrangement presently.' Dejected, I turned back. I never even noticed the large picture of Thakur in the hall or anything else. Just as we were walking back, Sri Gera (who was sitting in the meditation hall) came behind us and opened the library for us. I think, it must have been Mataji who had asked him to open it for us. We sat there for sometime and then went away. And that was the first meeting with Mataji.

Thereafter, I started visiting Sri Peeth often. The library was a big attraction. After a few days, I met Vinay Mehta in Sri Peeth itself. He was at that time in the first year of Engineering at Punjab Engineering College. We became friends. Some time later, I attended a celebration at Sri Peeth also in the evening. I do not remember what the occasion was. But, at the end of the celebration, Mataji asked me a few questions about which class I study in, what my subjects were etc. Sanskrit was one of the subjects that I mentioned and she expressed great interest in that. I did start visiting Sri Peeth regularly but I did not see her for many days. Later, I came to

know that she had suffered a heart attack. I do remember that later when I had met her, she asked me why I did not visit the hospital. I was nonplussed by this expression!As for me, I had not even realized that I should have visited her in hospital.

A few months later, Vinay took me to Mataji's residence at 579, Sector 18-B, Chandigarh. She took us aside to sit in the backyard of the Swami Nityatmananda's room at 579, Sector 18-B, Chandigarh. She was seated on the raised platform. Vinay sat below on the ground on a mat and I sat along with her on the platform itself. She talked of various things but sometime later, I felt that I should have sat below where Vinay sat. She or Vinay did not say anything but later when I got an opportunity I shifted below near Vinay. Thus, I started meeting her at her residence. She had stopped visiting Sri Peeth daily now (except for festive occasions) because of her ailing health.

I have been rather fond of Sanskrit. While reading Sri Ma Darshan or some other text in front of her, sometimes various Sanskrit quotations would come up. And I would read them well. She noticed that and would encourage me to study Sanskrit. Once she was talking of mind control and asked me to quote what Sri Krishna said to Arjuna: अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते (The mind is controlled by practice and dispassion). Instead of just quoting this part, I proudly started quoting from the beginning of the verse —असंशयं महाबाहो... She became angry. She told me, 'Just keep that part of the verse (अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते) in your mind. There is no need for the full verse.' Evidently, she did not like my quoting it proudly.

Another time, I remember her telling me: 'शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्' (the maze of words is a big jungle which causes

the mind to lose its way).' Perhaps, this was to guard me against a propensity to read too much.

I was fond of quoting various people sometimes in conversations. Once Mataji said, 'Young people are fond of quoting so and so said this.' Somewhere through all this, I stopped quoting in front of her. And I felt that one becomes only proud by just quoting such stuff.

I passed class X in 1987 and was planning to opt for non-medical stream in Class XI. During the ongoing admissions process, once Mataji asked me on what subjects l planned to take for class XI. It was compulsory to take four subjects (Physics, Chemistry, Mathematics and English) but there was an option to take a fifth subject. Mataji asked me what I would take as the fifth extra subject. I said that I was thinking of taking Philosophy. Mataji said, 'The western philosophy is of no use. So don't take that.' The possibility of taking Sanskrit came up but I said (as a result of the earlier rebuke from her), 'No, I won't take that as one becomes proud.' Pat came the reply, 'One can become proud because of anything. It could be due to engineering or studying medical science or anything.'

So it was settled that I will opt for Sanskrit as the extra subject. However, I faced numerous difficulties in taking up Sanskrit as the timetable of Sanskrit classes clashed with my other classes. As per her instructions, I tried to request our teachers to change the timetable but that did not prove successful. Finally, I got an exemption from the Principal of the college for attendance in Sanskrit classes. Only once per week could I attend the Sanskrit classes in the college.

Mataji took me along to one of her neighbours, Sri Jagannath Aggarwal, a renowned scholar of Indology, who

agreed to teach me Sanskrit. In that first visit, Sri Jagannath ji quoted a verse which was put down on a piece of paper by him for me at her behest: श्रमेण यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् (The Goddess of Learning, if worshipped with labour and zeal, definitely showers at least a little of Her grace).

The same thing was repeated in class XII when sufficient arrangements for teaching Sanskrit could not be made for me in my college. Again, she talked to another of her neighbors, Smt. Anuasuya, a professor of Sanskrit, who agreed to teach me. And thus, I was able to study Sanskrit in class XII also. Mataji asked me to keep studying Sanskrit later on too.

I remember once coming back to her residence from a walk with her and a reference to a train came up. I uttered the word लौहपथगामिनी (that is used for train — literally, it means, one that runs on an iron track). She thought I had said that jokingly and she uttered seriously, 'कभी संस्कृत और भारत के बारे में मज़ाक नहीं करोगे (You will never joke about Sanskrit or India).' From whatever little I remember, I do not remember having said that in jest but I had no courage to say anything more to her.

During XI or XII, we had portions of मेघदूतम् written by Kālidāsa. A part of the verse there reads: याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (It is better to have an unfulfilled desire from a virtuous person than to have it fulfilled one from a bad person). Once, I asked her just for the sake of asking something from her: Why has this been said? And suddenly Mataji flared up, 'Don't you have even this much intelligence? If you ask a bad man, he might do bad things to you, might rob you of your chastity. And look at who said this: a mad man (the reference was to the Yaksha in the poem who addresses cloud

as the messenger).' Henceforth I became very wary of asking questions just for the sake of asking questions.

She would often quote an incident of a Swamiji of Ramakrishna Mission to me (I forgot his name), who had met an English Engineer on a ship while sailing from India to abroad. The Engineer had said that Bhagiratha was a great engineer. And she would often ask me to find out the facts about this. [Recently, some people have written that the bringing of Ganga to this land of India was actually a great man made engineering feat]. Perhaps, this was what she meant too. That great superhuman effort and accomplishment is described in our scriptures in Puranic style that Bhagiratha conducted tapasya and Lord Shiva blessed him. There are many things that she said which I did not understand at that time and I don't understand them even now. One of these things is: she kept asking me to study about Bhagiratha as to what a great engineer he was.

While being around her, one had to be mentally alert and अप्रमत्त (careful) or a severe chastisement was bound to follow. For example, she might ask one to do some small thing like rolling up a mat. If that mat was not rolled up carefully and tightly, one would hear how it is to be carefully done, sometimes gently and not so unoften harshly.

During later years, when she was rather unwell, I once stayed with her during the night so that I can help her during her morning chores. That particular day, I woke up late and by that time she had done many of the things herself. She said to me, 'आज तुम्हारी मदद करने की सलाह नहीं है (You don't feel like helping me today).' That pinched me.

Of course, there were times when she would praise one or shower her love. And I would feel so good at that time.

Because, I did study Sanskrit in class XI and XII (as she had asked me) she once said, 'यह बात मानता है (he listens to what I said).' Once, the task of publishing of Vol. X of 'M., the Apostle and the Evangelist' was given to me. The work was very close to finish and I was to go away to Germany for a few days on an offical trip. Just before that, I had used the printer to take out the final printouts for the printer. And because I had done that task, she was so happy that she gave me a long kiss on my cheek thereby literally wetting it. Even today, when I think about it, I feel so happy. Once in a while, she would say, 'तुम अपने लोग हो (you are my own).'

While she was rather ill, she made a remark about her ill-health and how somebody would take care of her, 'तो क्या करोगे ? छुट्टी ले लोगे (So what will you people do? You will take leave).' And my mind was filled both with happiness also with an apprehension that because of some worldly pursuits, I may not be able to do it. So came an inward prayer that I may actually be able to serve her.

There are many things she told about regular observance. She would ask me to read Kathamrita and Sri Ma Darshan everyday — even if I read very little from it. Once she gave me her own Gita and asked me to read it. Another time, she asked me to visit Sri Peeth daily and that if due to shortage of time, I can't go inside, I should just offer pranāms from outside. I also remember her speaking very seriously once and saying, ''दो बार बैठना बहुत ही जरूरी है (It is very necessary to sit down twice in a day for japa/meditation prayer).''

When I look back at the time spent with her, I remember having received so much of शासन (chastisement) from her. To me, it appears that chastisement is the true wealth that I got from her.

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल के अवर सचिव रहे उनके गुरुभाई श्री बी.डे अपने 2 दिसम्बर, 1979 के संस्मरण में लिखते हैं :

'...Mother, it is all due to your chosen one, our respected Didi ji (Smt. Ishwar Devi) that your devotees thirsting for the Real are being shown the path to peace and joy and happiness real at this great Tirthasthan by her. In spite of her ill health, she is seen engaged in others' work, all the time untiringly helping the bhaktas. Mother, give me the wisdom to understand her and to do your work unselfishly. Pray give me the strength to bring into practice Thakur's dictum: 'God first, all else afterwards', the model of which is Didi ji.'

— नूपुर 1994, पृष्ठ 32

9

The Divine Power is Guiding Us!

— Nitin Nanda

स्वामी विवेकानन्द की एक पुस्तिका पढ़कर श्री नितिन नन्दा के मन में सुयोग्य गुरु-खोज की ज्वलन्त इच्छा जगी। ठाकुर-कृपा से सुयोग्य गुरु के रूप में उन्हें मिलीं 'माता जी' श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता।

— सं०

First Meeting with Mataji

It was divine grace that I got an opportunity to meet Rev. Mataji in February, 1990. The first darshan took place with the help of Sri Sandeep Nangia. Sandeep and myself used to study together in 11th and 12th in DAV College, Chandigarh. I was deeply impressed with him during our college days. He used to help two blind students, Rama and Shyama, in our college and following him, I started helping them as well to take their exams.

After getting into Computer Science in PEC, I started preparing for IIT – having dropped my first semester. During that time I came across a short booklet of Swami Vivekananda, which just moved my heart and brain – and I started nurturing a deep desire to find a Guru. As it is said in scriptures, when someone nurtures a deep desire to find a true Guru, he certainly

finds one.

Shortly after that Sri Ramakrishna appeared in my dream and instructed me to stay in Chandigarh – pointing with a finger, "You have to stay here." As per divine dispensation, next day I met Sandeep at his house and after exchanging few personal thoughts, he brought me to Mataji in # 579, Sector 18-B, Chandigarh.

Instructions in First Meeting

Upon meeting Mataji, she instructed me and told me to continue my engineering at PEC and drop the idea of IIT. I wanted to go to new Delhi and wanted to clean up India of various miseries, so wanted to study in IIT Delhi.

She told me: A bird in hand is better than two in the bush. After that she told me that we have to first clean our own receptacle i.e. utensil and pour good substance in it. Only then, we can teach and instruct others. Also, she told me to stand on my own feet and then do whatever I deemed fit.

Obedience

The same day, I decided to cancel the IIT preparation and started the semester in PEC. I conveyed this to one of my friends who was doing the same IIT preparation, but he decided to move forward with his IIT preparation and decided not to stay back in Chandigarh.

During my subsequent visit to Revered Mataji, she told me that she was very happy that I followed her advice and the rest would be taken care of.

Starting of Translation Work

During my visits to Revered Mataji, which was at Dr. S.V. Kessar's (her son-in-law) house, in Panjab University, where

Mataji used to stay at times, I mentioned to her that when I study I translate the text in Hindi to understand it. Upon hearing that she was very happy and said "I have found a translator!" And from next week she made me work with her husband, Shri D. P. Gupta, on the translation work of 'M., the Apostle & the Evangelist' starting from Volume IX. This was a turning point for my spiritual path, as I got a mission to work on the literature of Sri Ramakrishna and Sri M.

This made me a regular visitor to the Sri Ma Trust office, as Sri Dharm Pal Gupta used to wait for me every day at around 5 pm. I got the opportunity to work on these volumes. Smt. Sangeeta Kapoor and Sri Sandeep Nangia also contributed . Sri Dharm Pal Gupta guided me and helped me understand the insight of the books. It was a privilege to interact with such an elevated and gentle personality, and learn from him.

Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

By Sri Ramakrishna's divine grace, the translation work henceforth continued throughout my engineering education. After finishing my classes in College, I would come to Sector 18 almost daily – do translation work for an hour and then Rev. Mataji used to instruct me on Sri Sri Ramakrishna Kathamrita and Sri Ma Darshan.

The work for Volumes 9 to 16 continued for seven to eight years and I remember very clearly, the day we completed the sixteenth volume, Rev. Mataji instructed us to start the translation of Sri Sri Ramakrishna Kathamrita into English. And one day, she remarked, "I have found a person who would hold on the Kathamrita."

The complete plan was already laid out by her to keep each one of us engaged in Sri Ramakrishna's work. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Volume I in English was printed during her lifetime.

Some Teachings

Revered Mataji taught us on so many topics, not only in various worldly affairs but also in spiritual life. Some of her main teachings are enumerated below:

1. Our response should be based on place, time, circumstances and person— देश, काल, परिस्थिति और पात्र
2. Charity, kindness, service and discipline are four pillars of spiritual life— दान, दया, सेवा और संयम
3. To accomplish any work, you require जप, प्रार्थना, सावधानी और चेष्टा – repetition of God's name, prayer, alertness and perseverance.

Voice Without Form

There is lot to write down about Rev. Mataji, the way she helped nurture all of us and removed so many obstacles that came in our spiritual path and worldly life. I got opportunity to serve her during her last days along with Smt. Nirmala Kalia, Sri Vinay and Sri Sandeep. She is still with us, enlivening, guiding us, helping us and taking us forward in our quest for enlightenment and purification.

It is with Sri Ramakrishna's power and Revered Mataji's will that members of Sri Ma Trust were able to print all the five Volumes of Sri Sri Ramakrishna Kathamrita in English and other books of Sri Ma Trust – Bengali Sri Ma Darshan (reprints), Hindi Kathamrita, M., the Apostle & the Evangelist volumes (new and reprints), and Noopur magazine.

The new temple extension at Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Peeth that got completed recently is fulfillment of Revered Mataji's will and I am sure with Sri Thakur's power Sri Ma Trust will continue to spread his message and Gospel making each of us His humble instrument.

●

10

श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता

— एक विलक्षण व्यक्तित्व

— ईश्वरचन्द्र

श्री ईश्वरचन्द्र ने 'बहन जी' श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता को प्रथम बार सन् 1978 में अपनी बहन श्रीमती शकुन्तला बन्सल के घर देखा था। बाद में श्रीमती गुप्ता से मिल कर उन्हें निश्चय हो गया था कि ये कोई साधारण महिला नहीं हैं, विलक्षण हैं।

— सं०

बहनजी (श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता*) से मेरा प्रथम परिचय 32 वर्ष पूर्व सन् 1978 के उत्तरार्द्ध में हुआ था। सन् 1976 में मेरा अधिकांश समय छोटी बहन शकुन्तला के साथ ही बीता। उसके पति श्री रामनाथ बंसल बीमार थे। उन्हें बार-बार hospital में admit आदि कराना पड़ रहा था। भरे-पूरे परिवार के होते हुए भी वे लगभग अकेले-से रह गए थे — अपने दो कनाल के मकान — 519, सैक्टर 18-बी में। बस उन्हीं की यत्किंचित् सहायता के लिए अधिकतर यहाँ रहता। शकुन्तला का एकनिष्ठ प्रयास सफल न हो पाया और बंसल साहब का शरीर शान्त हो गया — 1977 में पहले दिन के साथ ही आधी रात के बाद।

अब छोटी बहन के लिए निपट अकेला रह जाने की पीड़ा उसके साथ-साथ हम सब भाई-बहनों और हमारे माता-पिता को भी सालने लगी, कचोटने लगी।

---

* इन्हें कुछ भक्त 'मम्मी' और कुछ 'दीदी जी' कहा करते। 'दीदी जी' कहने वाले भक्तों की संख्या अधिक है। मैंने इन्हें प्रथम मुलाकात से ही 'बहनजी' कहा है।

फूफा जी का लड़का वेद मित्तल चंडीगढ़ में ही नौकरी करता था। अपने परिवार के साथ यहीं पास के ही सैक्टर में किराये पर रहता था। वह अत्यन्त शरीफ, ईमानदार, सरल और विश्वसनीय। बस उसी को आग्रहपूर्वक 2-3 घण्टे में ही शकुन्तला के घर shift किया। एक और cousin brother भूषण (बृजभूषण मित्तल) भी यहीं नौकरी करता था। पर उसकी अपनी किन्हीं मजबूरियों के कारण उसका shift होना possible नहीं हो पाया। तो भी शकुन्तला की सब जिम्मेवारियों को उसने सम्भाला, आज भी सम्भाल रहा है। अब मैं अम्बाला लौटने के लिए free-सा हुआ। तो भी मैं शकुन्तला को मिलने अक्सर आता रहता था।

जब मैं अगली बार आया तो शकुन्तला ने बताया —''दीदी[1] को बात-बात में पता चला कि तुम publication में हो। वे तुमसे मिलना चाहती हैं।'' साथ ही शकुन्तला से मुझे पता चला कि ये कथामृत के लेखक किसी M. को विशेष रूप से रेखांकित करने का काम कर रही हैं। उसका स्वतन्त्र रूप से प्रसार-प्रचार कर रही हैं। मेरे लिए कथामृत और M. नये, अनजान नाम थे। तो भी किसी लेखक को रेखांकित करने का idea तो बिल्कुल ही अजीब लगा। यह और पता चला कि ये निराला द्वारा किए गए अनुवाद से सन्तुष्ट नहीं हैं। इन सब बातों से बहन जी मेरे लिए एक पहेली-सी बन गईं।

पर इस सबके बावजूद शकुन्तला के पास उन्हें देखना मुझे अच्छा ही लगता था।

एक दिन उसी के घर पर बहनजी से मुलाकात हुई। पता चला वे भी वहीं पास में (मकान नम्बर 579 में) रहती हैं। उस दिन उनके चेहरे पर फैली मुस्कान और उनकी देह में व्याप्त स्फूर्ति मुझे आज भी याद है। 63 वर्ष की आयु में[2] वे शरीर और मन से पूरी तरह स्वस्थ दिखाई दी थीं। उनका आकर्षक व्यक्तित्व देखने वाले को बरबस अपनी ओर खींच लेता।

सन् 1979 में मार्च मास में शकुन्तला CMC लुधियाना में admit

1 शकुन्तला ईश्वरदेवी जी को 'दीदी' कहती।

2 जन्म सन् 1915

रही। मैं भी बराबर उसी के साथ रहा। बीच-बीच में एक आध दिन के लिए मुझे चण्डीगढ़-अम्बाला आना पड़ता था। एक बार अपनी ऐसी visit में मैं शकुन्तला के कहने पर बहनजी से मिलने उनके निवास पर गया। उनके निवास पर यह मेरी पहली visit थी। उन्होंने मुझे 'श्री म दर्शन'- प्रथम भाग की एक प्रति दी — शायद पाँच रुपये में।

'श्री म दर्शन' मेरे book-rack में चला गया। आँख के सामने रहते हुए भी मैं उसे 'देख' नहीं पाता था। एक दिन यह पुस्तक हठात् मेरे हाथ में आई, इसे 'देखा' और देखता ही रह गया — देखता ही रहा! आज भी देख रहा हूँ। अद्‌भुत कृति! इस प्रति के माध्यम से श्रीरामकृष्ण साहित्य से मेरा परिचय हुआ।

शकुन्तला के जीवन में बहनजी का प्रवेश सन् 1978 में हो गया था। दोनों में सान्निध्य बढ़ता ही गया। मैंने महसूस किया कि शकुन्तला के जीवन में — उसके घर में बहनजी की भूमिका अहम बन चुकी है। बहनजी की इच्छा से उनके घर प्रति सोमवार साप्ताहिक सत्संग भी होने लगा था। अन्य जनों के साथ सत्संग में बहनजी स्वयं भी उपस्थित रहतीं। उनकी कृपा से यह सत्संग निरन्तर चल रहा है।

शकुन्तला पर बहनजी का इतना स्नेह कि उसके पारिवारिक कार्यों में वे सदा उसके साथ बनी रहतीं — जैसे कोई माँ अपनी बेटी के। सन् 1984 में मेरे सब से छोटे भाई राकेश के विवाह का आयोजन शकुन्तला के घर पर हुआ था। बहन जी बराबर उसके साथ रहीं। सन् 1985 में मेरी छोटी बहन (भाई-बहनों में राकेश से बड़ी) गुड्डी का ऑपरेशन PGI में हुआ था। तब भी बहनजी गुड्डी एवं समस्त परिवार का आत्मिक बल बनी रहीं। बीच-बीच में शकुन्तला रामचरित मानस के पाठों का आयोजन किया करती थी।

ऐसे किसी भी अवसर पर मैंने बहनजी को कभी भी अनुपस्थित नहीं देखा। अभी तक तो मैं उनकी उपस्थिति को मात्र औपचारिक 'साधु-दर्शन' समझता रहा पर सन् 1992 के बाद मुझे समझ में आने लगा कि उनका इस घर में आना, आते रहना न केवल शकुन्तला के लिए बल्कि हम

सबके लिए कितना शुभ, कितना मंगलकारी रहा! गुड्डी तो कहा करती थी कि ''दीदी जी ने मेरी बीमारी अपने ऊपर ले ली है।'' धीरे-धीरे मैं भी शकुन्तला के साथ-साथ बहनजी के साथ जुड़-सा गया। उसी की support से आज तक जुड़ा हूँ।

सन् 1990 मे 'श्री म दर्शन' के प्रथम भाग के reprint की जिम्मेदारी बहनजी ने मुझे देनी चाही। उन्हें पता था कि मेरा व्यवसाय पुस्तक-मुद्रण-प्रकाशन रहा है। मैंने बहनजी से कहा, ''अब प्रकाशन-कार्य को मैं और नहीं करना चाहता। मेरी रुचि तो धर्म, धर्म का मर्म समझने में है।''

''पर हमारा तो प्रकाशन का काम नहीं है,'' उन्होंने तत्काल उत्तर दिया।

अब मैंने जिज्ञासा की — ''तब, यह प्रकाशन नहीं तो और क्या है?''

उन्होंने विस्तार से समझाया कि ''हमारे प्रकाशन की यह सारी प्रक्रिया original की रक्षा और इसके प्रसार-प्रचार के लिए है।''

उनकी सारी योजना मुझे एकदम अद्‌भुत, विलक्षण लगी, original लगी। मेरे मन में आया और आज भी है — प्रकाशन के पीछे कितना बड़ा, कितना महान् purpose! और मैंने सहर्ष reprint का काम सम्भाल लिया। दिल्ली में वेणु के घर रहकर दिसम्बर, 1990 में ही यह काम सम्पन्न भी हो गया।

अब बहनजी से मेरी अपनी निकटता भी बढ़ने लगी। उनके ट्रस्ट-कार्य को (श्री म ट्रस्ट-कार्य को) मैं धर्म के व्यावहारिक रूप में देखने लगा। मानसिक-भावात्मक स्तर पर मैं अपने को ट्रस्ट से जुड़ा-जुड़ा महसूस करने लगा।

19 जनवरी, 1992 को हम सभी भाइयों को हठात् चण्डीगढ़ आना पड़ा। शकुन्तला के किरायेदार समर दास ने बखेड़ा खड़ा कर दिया था। Problem solve हो जाने के बाद दिन भर रह कर चार भाई तो उसी दिन लौट गए पर मुझे यहाँ रुकना पड़ा और मैं यहाँ रुक-सा गया। चण्डीगढ़ मेरा camp office जैसा बन गया। बहनजी से मिलने के लिए पर्याप्त समय मिलने

लगा। उनका भाव-स्वभाव समझ में आने लगा। निश्चय हो गया ये कोई साधारण महिला नहीं हैं। विलक्षण हैं। इनके जीवन का अपना purpose है, purpose के प्रति पूरी निष्ठा! कठोर, अनुशासित जीवन! इनके अपने सिद्धान्त हैं और सिद्धान्तों से कोई समझौता नहीं — No compromise!

मुझे विश्वास होने लगा कि बहन जी सत्य, अहिंसा आदि यमों और शौच, सन्तोष आदि नियमों के अर्थ को ही नहीं बल्कि उनके मर्मार्थ और व्यावहारिक रूप को न केवल समझती हैं बल्कि उन्हें पूरी तरह जीती हैं — उन नियमों का, उनके व्यावहारिक रूप का निज जीवन में पालन भी करती हैं।

इनका यही विलक्षण व्यक्तित्व एक संन्यासी को, स्वामी नित्यात्मानन्द को अपनी ओर आकर्षित कर पाया। और स्वामी जी भी कितने विलक्षण! श्री श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन जैसी लब्धप्रतिष्ठ संस्था को छोड़कर निकल पड़े अपने गुरु श्री म की वाणी के प्रकाशनार्थ। इसके लिए सुयोग्य एवं अनुकूल पात्र की खोज करते-करते इन्हें मिल गईं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता। अपने इस महत् लक्ष्य की पूर्ति के लिए स्वामी जी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के घर, एक गृहस्थ के घर रहे अन्त तक, सुदीर्घ 16 वर्ष। कोई विलक्षण संन्यासी ही ऐसा कर सकता था। अब दोनों एक दूसरे के साथ जुड़ गए। दोनों का purpose एक हो गया। परिणामस्वरूप 'श्री म दर्शन' जैसी विलक्षण ग्रन्थमाला बंगला में प्रकाश में आई। इस कार्य में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के पति प्रो० धर्मपाल गुप्ता का प्रशंसनीय योगदान रहा। श्री म दर्शन-बंगला का श्रीमती गुप्ता ने हिन्दी-अनुवाद और उनके पति प्रो० धर्मपाल गुप्ता ने इस हिन्दी-अनुवाद से अंग्रेज़ी-अनुवाद किया और इस प्रकार 'श्री म दर्शन' नाम से ही हिन्दी में तथा 'M., the Apostle and the Evangelist' नाम से अंग्रेज़ी में अनूदित होकर यह ग्रन्थमाला प्रकाश में आई।

●

श्री म दर्शन-कार्य और meditation — एक सा ही फल

श्री 'म दर्शन' के कार्य में श्रीमती गुप्ता कभी-कभी इतनी मग्न हो जातीं कि उनसे जप-ध्यान न हो पाता। इस बात के लिए उन्हें अफ़सोस होता, चिन्ता होती। स्वामी नित्यात्मानन्द ने उनकी चिन्ता का समाधान करते हुए श्रीमती गुप्ता को जो बताया था, वह 19 जून, 1970 को अपने गुरुभाई श्री बी.डे. को लिखे उनके पत्र में उल्लिखित है :

''पूज्य महाराज अब सदा कहते रहते हैं कि श्री म ट्रस्ट सेवा, 'श्री म दर्शन' कार्य और meditation-कार्य एक सा ही फल देने वाले हैं। मनुष्य केवल बैठे-बैठे ध्यान नहीं लगा सकता। 'श्री म दर्शन' प्रचार, बेचना, बाँटना और श्री म ट्रस्ट का कार्य करना — यह सब ही व्यक्ति को ठाकुर के साथ योग में रखता है। सो यह कार्य भी ठाकुर-ध्यान ही है, यदि निष्काम भाव से हो सके।''

—नूपुर 1998, पृष्ठ 71

11

लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ

— श्रीमती शकुन्तला बंसल

श्रीमती शकुन्तला बंसल को 1977 में पति के देहान्त के बाद 'दीदी' श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के रूप में न केवल सहारा मिला, ये दीदी उनकी गुरु भी हुईं और उन्होंने अन्त तक शकुन्तला जी का साथ निभाया। आज भी दीदी हर समय उनके साथ हैं, ऐसा उनका विश्वास है।

— सं०

सन् 1978 की बात है। दीदी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के साथ वाले घर में मिसेज रुद्रा रहती थीं — 578, 18-बी में। 1977 में मेरे पति का देहान्त हो गया था। उसके बाद मेरे भाइयों ने मुझे बहुत सम्भाला पर भीतर ही भीतर मैं अकेलापन महसूस करती। मुझे कोई सहारा चाहिए था।

मिसेज चाँद लूम्बा का घर मेरे घर के सामने ही था और मिसेज रुद्रा के पास मेरा आना-जाना था। एक दिन मिसेज रुद्रा मुझे अपने साथ ले गईं अपने साथ वाले घर में — 579 में, दीदी के घर। बाहर से ही उन्होंने आवाज़ लगाई, ''मन्नो! यह शकुन्तला आपसे मिलना चाहती है और दीदी आकर मुझे भीतर ले गईं।''

औपचारिक एक-दो बातें जान लेने के बाद उन्होंने मुझे अपनी बहुत-सी बातें बतानी आरम्भ कर दीं। फिर ठाकुर की। ठाकुर की बातें सुनते-

सुनते मैंने भी 'रामचरितमानस' की एक चौपाई बोल दी। घर में 'मानस' का ही प्राय: पाठ होता। चौपाई सुनकर बोलीं जरा जोर से, ''हाँ, हाँ, मुझे पता है, तुझे बहुत आता है।'' मैं चुप। बाद में मुझे एहसास हुआ कि ऐसा उन्होंने इसलिए कहा था ताकि मेरे भीतर किसी तरह का अहंकार न हो जाए। पर मेरे हृदय को वे भा गईं और मैंने उनके यहाँ हर रोज़ आना शुरु कर दिया।

कुछ दिन आते रहने के बाद मुझे लगा, ''मुझे एक ठिकाना, एक सहारा मिल गया है।'' इनका घर भी बस पास ही पड़ता है मेरे घर — 519, 18-बी के। कहतीं , 'आ, शकुन्तला आ' और खुश हो जातीं।

इधर मिसेज़ चाँद लूम्बा के भी पति का देहान्त हो गया था। बच्चे थे। वे अपने-अपने काम से चले जाते। पीछे से वे अकेलीं। वे भी मेरे साथ जाने लगीं। हम दोनों सुबह दीदी के घर चली जातीं और शाम को उनके साथ मन्दिर।

धीरे-धीरे दीदी ने हमारे यहाँ गीता-क्लास आरम्भ कर दी। प्रत्येक सोमवार को क्लास होती। समय भी निश्चित कर दिया — प्रात: दस से बारह बजे तक का। मेरे घर में ड्राईंग रूम के बगल में छोटा-सा कमरा था, उसी में उन्होंने मन्दिर बना दिया। आज भी वह कमरा मन्दिर ही है। उसी में गीता-क्लास शुरु हो गई। क्लास में हम दो-चार जन ही होते। गीता पढ़ाते समय बीच-बीच में वे 'कथामृत' और 'श्री म दर्शन' से उदाहरण देतीं। गीता-क्लास कब 'कथामृत' और 'श्री म दर्शन'-क्लास हो गई, पता भी न चला।

थोड़े समय बाद मिसेज लूम्बा बीमार हो गईं। पीजीआई में दाखिल थीं। लोग उन्हें देखने आते। दीदी भी आतीं। इनकी तो बात ही निराली। सगे-सम्बन्धी दु:ख प्रकट करते और ये हँसती और चाँद लूम्बा से कहतीं, ''तू तो ठाकुर के पास जा रही है ना, उनसे मेरा प्रणाम कहना।'' उनसे मिलने आए जनों को, उनके भाई आदि को बहुत बुरा लगता। पर इन्हें कोई चिन्ता नहीं।

मिसेज़ लूम्बा का देहान्त हो जाने के बाद दीदी मेरे घर और भी ज्यादा आने लगीं। इसलिए कि कहीं मैं अकेली न पड़ जाऊँ। पर अब मिसेज़

लूम्बा की बहन शैला जी मेरे साथ जुड़ गईं। वे भी पास में ही रहती हैं — 195, 18-ए में। अब हम दोनों इकट्ठी जातीं शाम को मन्दिर में।

दीदी स्वभाव से ही सख्त थीं। उनका कठोर शासन था। क्लास के समय कोई मिलने आ जाता तो कहतीं ,''बाहर लिख कर लगा दो कि मैं इतने से इतने बजे तक किसी से नहीं मिलूँगी।''

फिर कहतीं , ''शाम को मन्दिर daily आओ। उस समय तुम्हारे घर कोई आ जाए तो उसे भी साथ ही मन्दिर ले आओ। सबसे कहकर रखो, यह मेरे मन्दिर का समय है। इस वक्त मैं किसी से न मिलूँगी।''

अगर शहर में कोई अच्छी पिक्चर लगी होती तो मेरा और शैला का मन होता इसे देखने का। दीदी को पता लग जाता तो कहतीं, ''एक पिक्चर देखने से महीने भर की साधना बेकार हो जाती है।''

कभी-कभी मुझे बहुत बुरा लगता और मैं मन्दिर न जाती। पर दीदी तो आ जातीं मेरे घर अपनी लाठी लेकर। कहतीं, 'लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ', अर्थात् अगर प्यार किया है तो 'तोड़' यानि आखिर तक निभाना है।

दीदी बीमार तो रहती ही थीं। एक बार ज्यादा बीमार हो गईं। उन्हें ऑपरेशन के लिए दिल्ली जाना था। दिल्ली जाने से पहले एक रोज़ मन्दिर में आरती के लिए कोई और आया न था। बस मैं और दीदी थे। हम दोनों मन्दिर के प्रांगण में घूम रहे थे। बातें करते-करते बोलीं, ''स्वामी जी ने मुझे कहा था, 'तुम चाहो तो नाम दे सकती हो।' उन्होंने यह भी बताया था कि नाम देने की कोई निश्चित विधि नहीं है। मन्दिर में बैठकर, नदी किनारे बैठकर या आवश्यकतानुसार जैसे भी दिया जा सकता है।'' मेरे साथ घूमते-घूमते ही उन्होंने अपनी उंगलियों पर करके दिखाया कैसे नाम-जप किया जाता है। साथ ही 'नाम' भी बोलती गईं। बस उन्होंने मुझे दे दिया नाम। मुझे इसका पता भी न चला। न ही कभी मेरा इस ओर ध्यान गया।

इस बात का एहसास मुझे बहुत बाद में हुआ। दीदी का शरीर शान्त हो जाने के बाद की बात है। मुझे पता चला कि एक बहुत बड़े राम-भक्त

आए हुए हैं। जिसे भी नाम लेना है, वे दे देंगे। मैं भी चली गई। लोग लाइन में खड़े थे, मैं भी खड़ी हो गई। मेरी बारी आई तो मुझे देखते ही वे बोले, ''आपकी तो दीक्षा हो चुकी है। मैं फिर भी खड़ी रही। दो बार उन्होंने फिर अपनी वही बात दोहराई। तब जाकर मैं वापिस आई।''

वापिस आकर सोचती रही, ''मैंने तो किसी से भी नाम नहीं लिया है।'' सोचते-सोचते एकदम मेरी आँखों के सामने वह दृश्य साकार हो गया जब मैं और दीदी साथ-साथ मन्दिर में घूम रहे थे। उन द्वारा कहा, बताया सब याद आ गया और दीदी की आध्यात्मिक शक्ति में, उनकी गुरु-शक्ति में, वे गुरु हैं, इस बात में मेरा विश्वास और भी गहरा हो गया।

दिल्ली में उनका ऑपरेशन हो जाने के बाद मैं उनसे मिलने दिल्ली गई, वे बहुत खुश हुईं।

मेरी छोटी बहन सविता (गुड्डी) * को 1985 में ब्रेन स्ट्रोक हो गया था। उसे हम दिल्ली से चण्डीगढ़ ले आए। पीजीआई में इलाज चला। ब्रेन का ऑपरेशन हुआ। दीदी उसे देखने गईं। तीसरी मंजिल पर उसका कमरा था। और ये सीढ़ियाँ चढ़ती न थीं। पर चढ़ गईं। इन्हें देख मुझे लगा कि गुड्डी की बीमारी का सारा भार इन्होंने ले लिया है। मैं शान्त हो गई। और ये गुड्डी को moral support देतीं, मुझे भी। गुड्डी ठीक होकर घर आ गई।

बाद में ठीक हो जाने के बाद गुड्डी पापा जी के साथ बैठकर श्री म दर्शन के अंग्रेज़ी-अनुवाद में उनकी मदद करती। वह अंग्रेज़ी में एम.ए. थी। गुड्डी के बारे में दीदी कहतीं, ''इस लड़की में divinity है।'' गुड्डी की बेटी 'निवेदिता' नाम भी दीदी ने ही रखा। बाद में बेटा हुआ — 'सिद्धार्थ'। यह नाम भी दीदी ने दिया। सिद्धार्थ थोड़ा बड़ा हुआ तो मैंने उसे गोद ले लिया। मैंने गोद-समारोह के लिए निमन्त्रण का पहला कार्ड दीदी को ही दिया। वे समारोह में आईं और बड़े उत्साह से भाग भी लिया।

मेरे पति के देहान्त के बाद वे मुझे कहतीं, ''तू अब free है। अब ट्रस्ट का काम सम्भाल।'' पर भीतर से उन्हें पता था कि मेरा मन अभी संसार

* नवम्बर, 2004 में उसका स्वर्गवास हो गया था।

में है। औरों से वे कहती भी थीं, ''शकुन्तला बहुत ऊँची शक्ति है पर उसका अभी थोड़ा भोग शेष है।''

मुझे कोई भी समस्या होती, मैं इनके पास चली जाती। ये कहतीं, ''कोई भी समस्या generalise न करो। अपनी बात कहो।'' तो मैं सीधे-सीधे अपनी समस्या बता देती। सुनकर तुरन्त समाधान दे देतीं। लगता था, इनके भीतर आध्यात्मिक शक्ति है जबरदस्त। एक बार मैं किसी problem में घिरी थी, मन बहुत अशान्त था। मैंने देखा, ये मेरे साथ ही सोयी हैं मेरे बिस्तर पर।

दीदी के प्रति, ठाकुर के प्रति मेरा विश्वास और भी गहरा होता गया। हम तो ठाकुर को जानते न थे। मन्दिर में भी राम, कृष्ण, हनुमान और माँ दुर्गा के ही चित्र थे। इन्होंने लाकर ठाकुर रामकृष्ण का चित्र मेरे मन्दिर में रख दिया। मैंने कहा, ''इसकी कहाँ जगह है दीदी?'' बोलीं, ''एक तरफ रखी रहने दो। तुम अपनी जो पूजा है, करती रहो।'' बाद में एक दिन मन्दिर साफ करते समय मन्दिर के चित्र इधर-उधर किए तो लगा — यह फोटो बाकियों से बड़ा है, बीच में जँचेगा और उठाकर ठाकुर का फोटो बीच में रख दिया, बाकी सब दायें-बायें और दीदी यह देख कर बहुत खुश हुई थीं। तब से ठाकुर का फोटो ऐसे ही है, बीच में।

दीदी के प्रवचनों का, 'कथामृत', 'श्री म दर्शन' का मुझ पर, मेरे नित्यप्रति के जीवन पर सचमुच बहुत प्रभाव पड़ा। दीदी कहा करतीं — तुम 'श्री म दर्शन' मत छोड़ना। इसके पालन से तुम्हें दुनिया का भी सब मिलेगा — name, fame आदि सब। और मुक्ति का मार्ग तो यह है ही — जीवन्मुक्ति का मार्ग। और भी कहतीं — 'श्री म दर्शन' पढ़ती रहोगी तो बक-बक करने को भी बहुतेरा मिल जाएगा।

सच भी है, बाहर कहीं भी जाती, अपनी बातों में मैं दीदी की बातें, 'कथामृत', 'श्री म दर्शन' की बातें ही quote करती। लोग प्रभावित होते। पूछते तो कहती, ''तुम भी 'श्री म दर्शन' पढ़ा करो। यह बहुत प्रैक्टीकल है।'' कईयों को भेजती दीदी के पास। कोई टिका, कोई नहीं — जिसका

जैसा बर्तन। पर मैं भेजती।

दीदी कहा करतीं, ''जैसा विश्वास, वैसी प्राप्ति।'' मेरा भी जब-जब जितना विश्वास रहा, मेरी उतनी ही प्राप्ति रही। मेरे मन्दिर में उन्होंने साप्ताहिक — प्रति सोमवार को 'कथामृत', 'श्री म दर्शन' का घण्टे भर का पाठ आरम्भ करवा दिया था। पहले ठाकुर की आरती और फिर पाठ। वह आज भी हो रहा है ठाकुर-कृपा से दीदी की इच्छानुसार।

मेरे साथ-साथ नरेश (गुड्डी के पति) भी जाते दीदी के घर, कभी मुझे वहाँ छोड़ने, कभी मुझे लेने। कभी 1-2 दिन नरेश न जाते तो उससे कहतीं, ''भई, मेरे तो एक रुपए का नुकसान हो गया।'' और यह कह कर हँस देतीं। नरेश मन्दिर में एक रुपए की प्रणामी चढ़ाते थे ना, तभी ऐसा कहतीं।

अपने अन्त के दिनों में उनके शरीर में दम नहीं रहा था। तो भी हमारे घर चली आतीं wheel chair पर बैठ अपने सेवक राम के साथ।

आज भी दीदी मेरे साथ हैं हर समय। उन्हें याद कर-करके कई बार बहुत रोती हूँ तो मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। कहती है, ''ले, मैं आ गई। तुझे कहती थी ना, 'मैं मर कर भी कहीं नहीं जाऊँगी, तुम्हारे साथ रहूँगी। और याद है न — लाइयाँ ते तोड़ निभाइयाँ'।''

●

12

In Search of Sri Ma Darshan

— Ashish Dasgupta with Anuradha Dasgupta

'श्री म दर्शन' की खोज करते-करते यह 'दासगुप्त' दम्पति 'माता जी' श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के घर 579, सैक्टर 18-बी पहुँच गए। श्रीमती गुप्ता से मिलने के बाद उनकी यह खोज समाप्त हुई और उनके जीवन में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। इन्होंने श्रीमती गुप्ता को 'जीवन्त श्री म दर्शन' की संज्ञा दी है।

— सं०

It was February 1, 1984. I was posted at Chandigarh to open a Service Centre of Bharat Heavy Electricals Limited. The family — wife Anuradha, daughter Shravani [around 10 years], and son Chandan [around 2 years] joined me here in Chandigarh in the month of April. We were residing in House No. 513 at Sector 18-B. Meanwhile, my father died at Calcutta on May 25, 1984 and we went there. While coming back after all rituals, my mother accompanied us.

It was June 1984. It was one day my mother and Anuradha had been to in Ramakrishna Mission, Chandigarh. There my mother told Anuradha that she heard about a book titled 'Sri Ma Darshan'. They went in the library and glanced

through two volumes of the book and desired to buy these. They were told that the books were being published by Sri Ma Trust located in House No. 579, Sector 18-B, Chandigarh and all the volumes of the book are available there. The house was very close to our place of residence.

In the next few days my mother along with Anuradha, Shravani and Chandan located the House No. 579. On reaching there my mother and Shravani exclaimed, ''O my God! this is that very house!''

It so happened that one day while returning from morning walk my mother and Shravani were plucking flowers from a tree, branches overhanging from the boundary wall of the house. A soft and gentle melodious male voice came from inside, '*Hamaare liye bhi kuchh chhor dijiyegaa* (leave a few for us too please)!'

Later we understood that it was the voice of Papaji, Prof. Dharm Pal Gupta. This incident, even today, evokes laughter among us.

They went inside and were received generously by Smt. Ishwar Devi Gupta, later addressed as Mataji by us. They introduced themselves and told about their purpose of the visit. She made them sit and started telling them about the book 'Sri Ma Darshan' and its author Swami Nityatmananda, a long associate and a dedicated disciple of M. (the author of Sri Sri Ramakrishna Kathamrita in 5 volumes.) Revered Swamiji lived with M. nearly for 20 years.

She narrated that like M. , Swami Nityatmanandaji also used to keep regular record of M.'s deliberations on Thakur Sri Ramakrishna and his teachings and about the simple and saintly life style of M. as an ideal householder. The records were later transformed into manuscripts. Mataji further

narrated how she came in contact with Swamiji in 1958 at Tanda Urmar, learnt Bengali language, translated the books in Hindi. Her husband Prof. Dharm Pal Gupta translated the Hindi versions to English.

Swami Nityatmanandaji established Sri Ma Trust. Mataji took up the responsibility of printing and publishing work of Bangla 'Sri Ma Darshan'. Subsequently Hindi and English versions began to appear.

In due course Mataji and Papaji constructed a separate independent apartment for Swamiji in their house. Swami Nityatmanandaji stayed with them for about 16 years till the end.

Coming to know about the place of our stay in the same Sector 18, Mataji invited them to attend *satsang* at the residence of Smt. Shakuntala Bansal at House No. 519 on every Monday morning. The house was very near to our house. My mother and Anuradha along with Chandan started attending the *satsang* every Monday. Chandan was very little at that time and Mataji would call him Laal Chandan as he used to wear a red sandalwood colour dress. One day he got impatient and whispered to his mother, ''When the *prasad* will be distributed?'' Anuradha told Mataji humourously that Chandan came in attraction of *prasad*. Mataji lovingly scolded Anuradha saying, **"**For whatever reason it may be, let him come — he is coming to Thakur!''**'** Since then she would often take Chandan affectionally on her lap and offer *prasad.*

My mother used to visit her frequently. She got plenty of solace in those sorrowful days.

After my mother left Chandigarh, Anuradha along with her children would meet Mataji regularly and would get advice on 'how to remain with God even in household-

life'. I was having a busy schedule in establishing the new office and my nature of work involved frequent tours and long out-of-station stay, and as such my interaction used to be less with Mataji.

Mataji used to tell about the incidents of her coming in closer and closer contact with Swami Nityatmanandaji and her spiritual experience in relation to M. and Sri Ma Darshan. One day when Anuradha requested her to share some of Swamiji's mystic experience, she felt happy and said that people rarely ask such question. Feeling thrilled she took out her diary, and narrated the incident the Swamiji told her about the Holy Mother's gracious and unexpected appearance before him at Jawalamukhi-Shiva Temple in the form of a Bengali widow woman in March 1949. Later this incident appeared in Nupur 1995.

My personal visit used to be seldom because of my nature of job. Sincerely speaking , I used to love to meet her but never felt any serious spiritual urge from inside. Every time I went, I wondered why she was so kind to me to make me sit and spend her valuable time with me. I used to go to her for 5-10 minutes and would not return before 50-60 minutes! We loved going to her. Even after we left Chandigarh in November 1985 I visited Chandigarh regularly on official work and, to my knowledge, I never left Chandigarh without meeting her. At times, I would reach Delhi very late in the night. Such was her spiritual power of attraction! This reminds me the story of a peacock Thakur used to narrate. However, I failed to understand the reason for her such love and affection even when I was never so serious. Probably, this is called '*ahaituki kripa*' [the blessings without any cause]. In contrary, Anuradha was more inclined towards spiritual matters and would spend more time with her. Mataji's boundless love and

affection flowed to us spontaneously throughout.

Mataji would only talk and talk for long about spiritual subjects related to Swami Nityatmanandaji, Master Mahashaya (M.), Sri Maa and Thakur in spite of her physical ailment and fragile health. She would always look composed, serene, and beaming. She was leading a life of an ideal householder as taught by Thakur and vividly described in Sri Ma Darshan by Swami Nityatmanandaji. She would always encourage others to do so. In the language of her Guru-bahin, Pravesh-mataji — '*wo ek chhupi hui devi thi, jinake bina yeh kaam ho hi nahi sakta tha*' (She was a goddess in disguise without whom this work [of Sri Ma Darshan] couldn't have been accomplished). Mataji would consider all Thakur's devotees as members of 'Ramakrishna Parivar' [the term was being often used by Mataji] and would treat one and all equally.

Papaji, Sri Dharm Pal Gupta was always calm and quiet, gentle and soft spoken. His was a deep thinking personality. He played a perfect supportive role with mind and money. He used all of his resources with earnest love, care and reverence for Swamiji and Mataji.

The House No. 579, Sector 18-B, the abode of Swami Nityatmananda was charged with spiritual atmosphere. One can still feel it. It was, as if, *Sri Ma Darshan ke darshan* – a living Sri Ma Darshan in the form of Smt. Ishwar Devi Gupta! She was the center of the spiritual attraction! One can also see in her bedroom a picture of an eye pasted on a wooden block. She would tell, "All should keep in mind that invisible eye watches our every activity and one should refrain from doing any wrong in life."

Mataji was a genuine preceptor — doing good without one's knowledge! I had left the job of BHEL — and had joined a private firm but couldn't compromise with their business

approach and left in two years time. I started my own business. We were passing through severe financial crisis at that point of time when she asked us to donate ₹100 per month for Thakur Seva plus some amount for yearly functions. Similarly, when Shravani started earning she told her to donate separately. We were sure that she was not in need of money and it was for our benefit alone — to make us offer a part of our income to Thakur, as a service towards Thakur! What an example of Thakur's '*uttam vaidya*'!

Time passed by and children grew up. Mataji remained inseparable from our life. Shravani attained marriageable age and we found a suitable boy and a matching family. We went to talk to them – the place was near Chandigarh. On our return journey we visited Mataji. We gave her all information and mentioned that they were devotees of Thakur, and were initiated by the Mission. She kept silent for a moment and then commented , ''So what, even if they were initiated; all initiated ones need not be good human beings''. We took it as a general comment and went ahead. Ultimately, we had to drop our plan at the final stage — we realised that we were saved from an untoward happening. Finally, she was married to a very good boy from a decent family.

Her holy association remains a source of inspiration for our family to lead a good householders' life – Shravani is performing a perfect role of a wife and mother. Mataji's Laal Chandan passed engineering and leaving behind his service-life went to USA for higher studies, with a mission to engage himself on child-education. He married a like-minded sober girl of a decent family from Chandigarh. We feel our children are always safe and protected under her care. We are now free to focus on a secluded life – the Vanaprastha.

Before we complete our reminiscence we would like to

narrate two interesting incidents.

It was after Shravani's marriage — we, both the families comprising of eight members, decided to visit Mataji during mid April 2002 to seek her blessings. Accordingly we informed Vinayji, a sewak-bhakta, the previous night about our visit. During that time Mataji was critically ill and bedridden, seldom speaking, as if withdrawn from outside. Naturally, she was not told about our visit. Next morning we started from Delhi around 4 am. Almost at the same time in the morning around 4 o'clock at Chandigarh Vinayji and Nirmala Bahen were attending Mataji to get her fresh. She kept on murmuring, 'Why so many people are coming, why so many people are coming?' Telling or no telling she could know! That day to everyone's surprise she spoke to us for a long time, blessed Shravani and her husband Shubho, presented Shravani, inscribing her blessings, the Volume I of Sri Sri Ramakrishna Kathamrita (English version translated by Prof. Dharm Pal Gupta, and published by Sri Ma Trust). The memory of the day is unforgettable!

Once we came from Delhi to meet her. She was lying down on her bed and beside her bed on right side her daughter, Urmi Didi was sitting at her feet. Anuradha took the place by her bedside near her head, on the right side. Urmi Didi got up and asked me to sit there. I had a strong desire to caress her feet and on taking the seat I found her bare feet just before my hands and I began to caress. Anuradha almost jumped from her seat and took one of her feet, saying — I was longing to do so and you have taken my place. Mataji quipped, '*Le leo*, *le leo saare khoob le leo* (Take, take, all take to heart's fill).' She could understand our intention! Her feet were soft and tender, and were of lotus pink colour – as we heard about Holy Mother's feet.

In May 2002 after she left her mortal coil we reached Chandigarh along with Padma-mataji. The board of trustees of Sri Ma Trust held a meeting on that day and decided to computerize and publish Sri Ma Darshan (Bengali). We were asked to find out a suitable composer. We remember how often Mataji used to mention her problem of getting the books printed by the Calcutta Publishers, who had almost lost interest in publishing the books which were in great demand. We could find a devoted, sincere and efficient lady composer at Delhi, without whose unending patience and perseverance, all sixteen volumes of the books [including proof correction] couldn't be completed in only two years time. We took up complete responsibility of computerization, proof reading, and coordination with the Printers. Anuradha enjoyed spending days after days sitting from morning till night with the composer, Smt. Roma Chakraborty. Roma too enjoyed the work, engaged herself devotedly leaving all other work, and would take care of Anuradha including serving lunch and evening refreshment. I would join them before and after my office hours and whole day on holidays. I was to organize the activities providing all logistic support, coordination with the Printer, and taking care of the quality. Mostly, Anuradha did the proof reading. I also joined her from time to time. Those were our most wonderful and satisfying days! Overcoming certain ailments Anuradha's health improved! The printer identified by the Trust was found residing close by, just two blocks away from us, made the job further easy. Everything fell in place and everyone's devoted efforts resulted in completing the publication of all the sixteen volumes in a very short period of two and half years. It could be made possible only by Mataji's grace! Ultimately, Sri Ma Darshan, Bengali could be published by the Trust itself. Mataji's dream came true!

It was the earnest wish of Swami Nityatmanandaji Maharaj to propagate the teaching and thoughts of M. to every householder. He lived only to complete the writing and publishing Sri Ma Darshan in sixteen volumes (in Bengali), and left his mortal coil immediately thereafter. He prepared Smt. Ishwar Devi Gupta to do the rest — translation and publication of the book in Hindi and English. Being a housewife, discharging her usual responsibilities, one can visualize how many odds she had to face. She was determined to overcome all difficulties and committed to fulfill her Gurudev's wish — the publication of Sri Ma Darshan in Bengali, as well as translating and publishing the same in Hindi and English. Of course, it could not be made possible without active participation of Papaji, Prof. Dharm Pal Gupta. He was the true example of an ideal householder — demonstrating the teachings of Sri Ma Darshan in his life!

Looking at the demand of the books we feel that her aspiration — let Sri Ma Darshan reach to every house, to every householder and bring solace to their tumultuous life — is being fulfilled. We also now understand why she showered her *ahaituki kripa* on us — and now we are sure that we were identified from the very beginning to carry out her work!

We always cherish our association with Mataji who showed us the right path to tread. She is ever present in our life!

— नूपुर 2012, पृष्ठ 71–80

ठाकुर श्रीरामकृष्ण

|

श्री म

|

स्वामी नित्यात्मानन्द

|

श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने पास आने वाले भक्तों से कहा करतीं—

देखो! ठाकुर तुम्हारे कितने समीप हैं! तुम आपस में एक-दूसरे का हाथ पकड़ो, फिर अन्तिम जन का हाथ पकड़ते हुए कहतीं— देखो, तुम सब का हाथ है मेरे हाथ में, मेरा हाथ है स्वामी नित्यात्मानन्द के हाथ में, उनका हाथ है श्री म के हाथ में और श्री म ने पकड़ा है ठाकुर को; तो तुम सब हो ना ठाकुर के पास! कहाँ दूर हैं ठाकुर तुमसे? तुम सब हो ठाकुर के अपने बालक! उनके निजी जन! एक हाथ से ठाकुर को पकड़े रखो कस कर! फिर तुम संसार में गिरोगे नहीं।

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की यह आश्वस्त वाणी उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्तों का आज भी मंगल कर रही है। उन्हीं की प्रेरणा से उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्त श्री म ट्रस्ट के माध्यम से आज भी ठाकुर-सेवा में लगे हैं।

13

At Home, with Spirituality*

—Gitanjali

गीतांजलि का परिचय हमारे एक परिचित मित्र-परिवार, गर्ग-परिवार के माध्यम से हुआ। इन गर्ग-परिवार के साथ वाले घर में ही गीतांजलि जी रह रही थीं सैक्टर-8 में अपने पिता के पास। गर्ग दम्पति 'नूपुर' पढ़ा करते अति उत्साह से। फिर हमारी परस्पर की बातों में दीदी जी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता का ज़िक्र तो होता ही। एक बार गर्ग साहब को उत्कट इच्छा हुई दीदी जी के दर्शनों की। वे उनके दर्शन-लाभ के लिए दीदी जी से मिलने गए भी। इन्हीं गर्ग साहब के मन में इच्छा हुई — ऐसी जबरदस्त शख्सियत के विषय में अखबार में छपना ही चाहिए ताकि लोग इन्हें जान सकें। उन्होंने स्वयं ही इस विषय में गीतांजलि जी से बात की। गर्ग साहब के यहाँ हमारा आना-जाना था ही। उन्होंने हमारा परिचय गीतांजलि से करवाया। प्रारम्भिक परिचय के बाद वे बोलीं — अभी तो मैं थोड़ा व्यस्त हूँ कल आप से फोन पर बात करूँगी। मैं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के विषय में कुछ और जानना चाहती हूँ। अगले दिन निश्चित समय पर उनका फोन आ गया। उन्होंने मुझसे जो-जो पूछा, मैंने सब बताया। अब उन्होंने श्रीमती गुप्ता से स्वयं मिलना चाहा; और निश्चित दिन व निश्चित समय पर वे दीदी जी के घर 579, सैक्टर 18-बी में पहुँच गईं। मैं उनसे पहले ही पहुँच चुकी थी। निर्मला कालिया

---

* This article was published in the Tribune, Chandigarh on Sunday, August 19, 2001, Rev. Ishwar Devi Gupta left this mortal world on 26th May, 2002.

जी तो वहाँ थीं ही।

उन दिनों दीदी जी काफी अस्वस्थ चल रही थीं। ठीक से बात भी नहीं कर पा रही थीं। गीतांजलि जी के सभी प्रश्नों के उत्तर मैंने और निर्मला जी ने ही दिए। और फिर यह लेख 19 अगस्त, 2001 को ट्रिब्यून में छपा :

—सं॰

"There's no doubt that Sri Ramakrishna Paramahansa inspires his devotees to carry forward his mission but the way he made a critically ill, non-Bengali woman living in Punjab a messenger of his will has been truly miraculous." This observation was made by Swami Nityatmananda, a *sannyasi bhakta* of Ramakrishna, when Ishwar Devi Gupta successfully translated the first volume of his *Sri Ma Darshan* from Bengali to Hindi in the early 1960s.

Since then this noble messenger has translated 15 other volumes of *Sri Ma Darshan,* which throws light on the great life of Mahendra Nath Gupta (lovingly known as M. and Sri Ma, in Bengali), a close disciple of Ramakrishna who showed how as a householder one could live a divine life, as described in the *Vedas*. Ishwar Devi has also translated into Hindi the five volumes of *Sri Sri Ramakrishna Kathamrita* (the English version is the widely read *The Gospel of Sri Ramakrishna)*, written by Ma in Bengali.

Today this propagator of the holy name of Ramakrishna is 86 years old, frail and almost bedridden in her home in Chandigarh. Yet, she courageously declares that she still has "a lot of Thakur's *kaaj* to complete." Popularly known as Didi, she is always ready with a kind word for those in distress and never fails to echo the profound wisdom of Ramakrishna to those who seek her guidance in matters, personal or spiritual.

At present the president of Sri Ramakrishna Sri Ma Prakashan Trust, set up in 1967 by Swami Nityatmananda to spread the teachings of Ramakrishna, Ishwar Devi Gupta's tryst with Thakur *vaani* spans a number of decades.

She and her husband Prof. Dharm Pal Gupta, who was the then principal of Government College in Tanda, Hoshiarpur, first met their guru Swami Nityatmananda in 1958. This mother of five, (four daughters and a son), felt drawn towards the spiritual path upon hearing the learned *sannyasi's* lectures on M., who brought the *Vedanta* to the homes of the householders. Incidentally, Vivekananda and M. were the two main devotees of Ramakrishna; the former was a *brahamachari,* while the latter was a householder. Swami Nityatmananda had the privilege of serving M. for several years and during the course he recorded all the latter's day-to-day conversations and spiritual discourses in a dairy and later published them as *Sri Ma Darshan* in 16 volumes.

In 1960, Ishwar Devi was hospitalized and diagnosed with ulcer of the colon. Though her condition was deteriorating each day, her guru Nityatmananda assured her that she would not leave the mortal frame without serving Thakur. For more than a month, Ishwar Devi battled for life. There came a time when even the doctors gave up hope but her guru's words kept her going and she promised herself that she would devote the rest of her life to the service of God and mankind.

While convalescing in her home, Swami Nityatmananda often translated and read out to her passages from the first volume of *Sri Ma Darshan,* which he had then just completed. Iswhar Devi felt a burning desire to read and publish the text. As a result, she not only learnt Bengali

but also translated the first volume while lying in bed and recovering from her illness.

This onerous task of translating the text written in a language alien to her was taken up by her "to take a closer look at the life and spiritual progress made by Sri M. …. I had one more wish: Seeing the restlessness in society and the deteriorating family values, I wanted to present this great text to the Hindi-speaking devotees of Sri Ramakrishna. This text can not only improve and spiritualize a person but also help a community, country and the world."

Swami Nityatmananda, upon reading the translated work, ecstatically remarked, "Devi, the work of translation is a dull affair, but because of your identification with the subject matter of the book, your translation has come out so lively …it is not only simple and artistic, but also equally lucid, expressive and true to the original… I pray sincerely and humbly at His holy feet that he may inspire you to translate the remaining part…"

In the years to follow, as per her guru's wish, Ishwar Devi religiously completed the rest of the translations too. Her husband, who too had been drawn to this path, carried Sri M.'s flame through his lucid rendition in English of the Hindi version of *Sri Ma Darshan* and *Sri Sri Ramakrishna Kathamrita.*

From 1959 to 1975, till Swami Nityatmananda attained *mahasamadhi*, this devoted couple had the privilege of serving their guru, who had acceded to their rquest to live with them. In 1968, after Dharm Pal Gupta's retirement, Swami Nityatmananda moved with the couple to Chandigarh, where he opened his office at their residence in Sector 18. During his stay in the city, Swami Nityatmananda gave the final touches to the remaining 14 volumes of *Sri Ma Darshan,* while

his two *sevaks* tirelessly worked on the translations and the printing of the manuscripts.

Ishwar Devi, who alongside took care of her children and household chores, says that those days she packed 36 hours in a day. She, however, believes that she couldn't have achieved what she did without the loving support of her husband (she lost him in 1998) and children, who have achieved top positions in their respective fields.

Now, even in her failing health, Ishwar Devi oversees the activities of the Sri Ma Trust, which include helping needy persons, arranging seminars and educational tours, bringing out an annual booklet called *Nupur* on the birth anniversary of Swami Nityatmananda and supervising *satsangs* and celebrations at Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Peeth, a temple dedicated to Ramakrishna in Sector 19, Chandigarh.

By serving God in the role allotted to her— that of a householder— this octogenarian has paid a befitting tribute to her spiritual masters, who professed that one could serve and reach Him without living the life of a hermit in a forest. She has truly lived up to the teachings of Ramakrishna, whose advice to householders was: "Let the boat be in water, but let there be no water in the boat; let an aspirant live in the world, but let there be no worldliness in him."

•

Renovated Sri Peeth-temple from outside

14

Dreams Brought into Reality

— Pradip Das Gupta

'श्री म दर्शन' का बंगला से हिन्दी-अनुवाद और इसका प्रकाशन श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के जीवन का उद्देश्य था। प्रदीप दास गुप्ता जी को इन श्रीमती गुप्ता व श्री म ट्रस्ट के विषय में समस्त जानकारी मिली 'the grey haired person' — श्री ईश्वर जी के माध्यम से। श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत-पीठ के विस्तारण का कार्य अभी-अभी समाप्त हुआ है। प्रदीप दास गुप्ता को इस भवन की ईंट-ईंट श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता की अपने कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा व भक्ति की गाथा कहती दिखाई दे रही है।

— सं०

And the construction is now over, the dreams are brought into reality, placing the efforts one by one with great devotion. Every brick is a story of sacrifice where the ultimate strength and shine is a combination of a dedicated mind, body and soul which was focused together to develop those dreams. The soul, mind, dedication, devotion and sacrifices coexist here along with her master, their virtual children and she herself. They breathe here every moment which emits a vibration around.

I went to photograph the reality the other day and found that the Sun was prepared to take a day break peacefully behind

the construction, as if the synchronisation of my timing was such, that I interpreted it, as the great power quietly paying his reverences by taking a position behind the mountain of dedication which has nicely developed the dreams into reality. The rising Sun comes with its first light illuminating the temple, as it's facing South-east, acknowledging the devotion,

The Present Temple of Sri Peeth from inside

dedication and sacrifice made for the task.

The light was not ideal for a photo shoot, but since I reached there with a mind of doing something, I thought of doing whatever little I could than just nothing. It will be better than going back empty handed. I also read my mind between the lines, which was confident and said, "None ever goes empty handed from here".

Another day, I was sitting with a grey haired person, who knew about all these efforts towards turning those dreams into reality. He was trying to draw a picture by narrating the facts as he heard from that very great soul while in body. He wanted to take me to that altitude where dedication and

devotion were as spontaneous as a stream. He desired to take me into the depth from where again sacrifices came by depriving the self effortlessly. Tricks were played to achieve an honest goal and the goal was prime desire of life. I asked him, "Why don't you write?" "These can't be written," he replied. I was astonished. He felt afraid lest, these should be misinterpreted.

Misinterpretation is the part of totality. One cannot avoid doing work while thinking of failure. The wave has formed, but, the tiny droplets went unnoticed carelessly, this was my misinterpretation. The grey haired person went on saying with tremendous emotions where he broke down into tears. I also could not hide them while he took me to that height and depth.

He was narrating that a petty amount of petticoat's money was saved for the purpose by doing with just a patch work on it. Life saving medicines were curtailed out of a spirit self abnegation. Part of grocery budget was compromised. The entire basic needs were compromised towards achieving the goal. So much so the budget of daughter's marriage, which was also compromised. Compromising with the basic needs was the austerity practiced by her.

A daughter of a Barrister, wife of a college Principal, mother of four daughters and one son was not her actual identity. She was devoted to a mission being a devotee and that's all she was. Medical practitioners declared her disease as an incurable one during 1960, almost halfway of her life when she was yet to dream the dreams which have transposed into reality now. Despite being an atheist, the Principal prayed for the first time in his life while she was in the process of being taken to a hospital and he knew about the outcome, which was explained to him by doctors. The miracle happened. The prayer of the husband was heard as the Providence felt

that a greater task was yet to be performed by her as pronounced by a spiritual man.

Now the lady is back home, totally unwary of the task to be performed and restless about that. Eventually by this time she was also under the influence of spiritual thoughts of a noble man that she learned from his discourses who had earlier prophesied about the task. She eagerly expressed her desire to meet the man whose spiritual aura influenced her. Now she came under the guidance of a spiritual master who was in the process of making a mountain out of a mole.

The subject lady, though belongs to the northern part of the country has now started learning Bengali to imbibe thoughts more clearly than before. Her master was on a mission of writing and publishing his master's work and was looking for a way. Now the entire mission of his found a light when she started translating his creation 'Sri Ma Darshan' from Bengali into Hindi having learned the language even in ailing health. The principal too could not sit back and carried out a simultaneous operation to translate Hindi into English under one roof.

This was all about publishing a great work written by her great master, who though a monk, lived with her at their residence in order to accomplish this great task.

A number of followers of the monk started visiting the house. The members also started taking care of them beside the main objective of publishing and translating and above all fetching financial resources for all these while the retired principal remained the only source of regular income. The response of the monk was negative while multiple proposals for re-employment for him were offered. The money offering from the visitors was on three heads. An offering could be

made for the monk, for publishing purpose and under general head. The offerings in kind like sweets and fruits etc. were distributed to the children and the visiting devotees and what remained was used at home suitably paying a matching amount from day-to-day monthly expenditure into the head of publishing. But these were not enough to undertake this mammoth task. Now the lady started curtailing her needs which went unnoticed initially. The house physician of the lady found some change in the health condition of the lady and learned she was taking half the prescribed medicine and the remaining money used to go into the fund under publishing head. The matter was reported to the monk who was deeply concerned.

In the mean time a good amount of donation was received by the monk towards publishing the scripture. The monk was happy thinking that all the constraint would now be over and the mission would be achieved. But he remained unwary about the vision which the lady possessed. She told her master, 'The Principal had produced children and he constructed a house for them to stay. But what about for the monk's children which were being produced simultaneously?' The monk was totally blank and did not follow her latent message. The lady then explained to the monk that the publications are his children and they needed a place, rather the entire process of the colossal work should go on from a place, which might not be practicable from this present residence in future.

The monk surrendered to this vision as he had no grip over the worldly affairs. A land was applied for, allotted and purchased for the purpose. But the work went on from the same house where the principal had made a special construction for the monk. In 1975, the monk fell sick and

breathed his last here only. It was only after his death that construction was raised on the abovesaid land which was named 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Peeth'. This very Peeth has now been extended. Thakur has fulfilled, this wish of hers.

The translation of the scripture 'Sri Ma Darshan' from Bengali into Hindi and 'M., the Apostle and the Evangelist' from this Hindi to English was on along with the publishing of Bengali volumes step by step under supervision of the monk. It went on even after his death and reached its culmination.

Sri Ma Darshan became popular at home and abroad, which was initially marketed by the lady to the visiting devotees and others. The demand was swelling and the volumes went for reprinting to the publisher. A mission achieved with so much success that the book became one of the most important and popular ones in Sri Ramkrishna order and even outside.

After accomplishing the huge task of translating all the 16 volumes of Sri Ma Darshan*, five volumes of Kathamrita into English, the Principal left for heavenly abode in 1998. In addition to this work,the Principal wrote a 'Big Life of M.' and edited 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial'.

The Doctors, who were very sure about the death of the lady during 1960 were proved wrong but finally she left her body in 2002 and started living in her work which she had accomplished with tremendous devotion, dedication and perseverance.

The grey haired man stopped in-between numerous

---

* In English it was named 'M., the Apostle and the Evangelist'

times while narrating the facts. Each time he wiped his humid eyes with his palm. Normally he doesn't speak for so long. Earlier on several occasions he confessed saying , " I'm tired, I can't speak now and you can go." On each such occasion I would leave with having lots of facts from his memoir. This time, he really had shifted at the level of his mind and soul to the alleys of past and practically enjoyed the aura and divine presence of the holy characters. I would love to quote one such anecdotes here.

Even after the spiritual master of that great lady breathed his last she enjoyed his presence all the time. She used to come and say to the grey haired person, ''Today my master came and spoke to me in the form of a lizard, day before he came as a crow while I was cooking.'' On that occasion, on this occasion, this way or that way she always felt her master's presence with her. I understand that her soul stood always ajar, ready to welcome the ecstatic experiences. This time when the grey haired man was narrating me all these, I felt he was experiencing the same communion with her presence from some high and profound spiritual altitude.

Smt. Ishwar Devi Gupta— it is important to go through her life and learn that living in the same household with her Guru, how she carried out all the responsibilities of the household at different stages along with the task of serving her Guru and doing his work of the 'Sri Ma Darshan' and Kathamrita etc.

Having accepted her domination, her all time presence in his life, Sri Ishwarji , the grey haired man has now accepted Srimati Ishwar Devi Gupta as his guru. She is not now in her mortal frame, is not a matter of concern for him. For him she is still alive.

My narration does not conclude here. Now I need to

add some rebuttal submitted by Shri Ishwar Ji, when I visited him once with my story, narrated by him. He has a strong objection towards using the word sacrifice. He explained that it was a fluent way of life that Smt Ishwar Devi Gupta lived. It was spontaneous, charming and a sort of ecstatic living. Let me now just understand it as sacrifice as I am yet to experience or get the essence of that noble highest status meant by him, *"Another Vivekananda will only understand what Swami Vivekananda did for this society."*

•

15

श्री 'म' दर्शन का अनुवाद-रूप व्रत

— श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता का 'श्री म दर्शन' के प्रति क्यों आकर्षण हुआ और अबंगाली, पंजाब की रहने वाली महिला होते हुए भी उन्होंने मूल बंगला में लिखित 'श्री म दर्शन' का हिन्दी में अनुवाद क्यों किया, आइए सुनते हैं स्वयं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के मुख से :

— सं०

1958 में पूज्य स्वामी नित्यात्मानन्द जी के प्रथम दर्शन का शुभ अवसर मिला। इस समय से भी 25-30 वर्ष पहले से मन में यह भाव उठ रहा था कि आज के युग में प्राचीनकाल के ऋषियों की भाँति गृहस्थ आश्रम में किस प्रकार परमानन्द में रहा जा सकता है। दैव-क्रम से युगावतार श्रीरामकृष्ण के एक संन्यासी सेवक स्वामी नित्यात्मानन्द जी का प्रवचन सुनने का सुयोग मिला। इसी प्रवचन के प्रसंग में श्री 'म' (श्री महेन्द्रनाथ गुप्त) का नाम भी सुना।

श्री 'म' बंगला में श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत (पाँच भागों) के तथा अंग्रेज़ी में 'The Gospel of Sri Ramakrishna' के जगद्विख्यात लेखक हैं। गुरुदेव श्री श्री ठाकुर के आदेशानुसार गृहस्थ आश्रम में रहते हुए ही आजीवन शिक्षा-व्रती होकर उन्होंने वैदिक ऋषियों की भाँति जीवनयापन किया।

''मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ आदर्श ईश्वर-दर्शन है,'' यह वाणी भी मेरे हृदय में श्री 'म' का जीवनचरित्र सुनकर ही प्रवेश की।

स्वामी नित्यात्मानन्द जी ने बंगला श्री म दर्शन से श्री 'म' की जीवनी का कुछ अंश हिन्दी अनुवाद करके सुनाया। इसी पाठ को सुनकर मन में धारणा हुई कि श्री 'म' गृहस्थ आश्रम में रहकर संसारी सकल कार्य सम्पन्न करके भी भृगु, वशिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों की भाँति आत्मज्ञ और विदेही थे। उसी समय श्री 'म' के दैव-जीवन के विषय में अधिकतर जानने की आकांक्षा तीव्र हुई। उसी समय ही इसी आकांक्षा ने मुझे बंगला भाषा सीखने में व्रती किया। भाषा सीखकर श्री म दर्शन के प्रकाशित दो भाग पढ़े और कुछ बंगला पाण्डुलिपि भी देखी। श्री म की जीवनी और वाणी के साथ और भी घनिष्ठ परिचय करने के लिए मैंने हिन्दी भाषा में श्री 'म' दर्शन का अनुवाद रूप व्रत लिया। इस विषय में कई साधु, महात्माओं और भक्तों ने उत्साहित भी किया।

श्रीमती गुप्ता ने स्वामी नित्यात्मानन्द को कैसे बाँध लिया

पहली जनवरी, 1965, श्री कल्पतरु दिवस। वृन्दावन आश्रम के सेक्रेटरी स्वामी कृपानन्द जी ने ईश्वरदेवी से प्रश्न किया, ''श्रीमती गुप्ता, आपने जगबन्धु महाराज (स्वामी नित्यात्मानन्द) को कैसे बाँध लिया? उन्हें तो उनका इतना बड़ा समृद्धिशाली अपना घर भी नहीं बाँध सका, और संन्यासी बनने के पश्चात् रामकृष्ण मठ और मिशन भी जन-सेवा के लिए अपने यहाँ नहीं रोक सका। हम सब बड़े हैरान हैं कि बात क्या है'' करबद्धा श्रीमती गुप्ता ने कुछ चिन्तन कर सविनय कहा, ''महाराज, एक कहानी याद आ गई। एक राजकुमार को एक राक्षस का विनाश करके एक फूल लाने का आदेश हुआ था जिसके परिणाम में उसको अपनी मनोवांछित वस्तु मिलनी थी। राजकुमार जब अनेक विघ्नबाधाओं को पार करके उस राक्षस के राज्य में पहुँचा तो उसे वहाँ एक सुन्दरी वृद्धा जादूगरनी मिली। उस जादूगरनी ने राजकुमार को दिखाया कि सामने पिंजरे में जो तोता है, उसमें उस भयंकर राक्षस के प्राण हैं। तुम इस तोते की गरदन मरोड़ दोगे तो तुम्हें अनायास ही फूल मिल जाएगा।

राजकुमार ने जादूगरनी के बताए तरीके से उस तोते की गरदन मरोड़ दी और वांछित फूल तथा राक्षस का सारा राज्य-वैभव पा लिया।

महाराज मुझे तो लगता है, श्री गुरु महाराज के प्राण 'श्री म दर्शन' में हैं। श्री म दर्शन को श्री श्री ठाकुर ने अपनी असीम कृपा द्वारा मुझे पकड़वा दिया है, तभी महाराज यहाँ अटके हुए हैं।''

'श्री म दर्शन' के प्रकाशन का मुख्य प्रयोजन

'श्री म दर्शन' के प्रकाशन का मुख्य प्रयोजन अपने हिन्दी भाषा-भाषी बहन-भाइयों के हाथों में यह अमूल्य सम्पद् देना है। इसका मूल विषय एवं उद्देश्य है — सुख-दुःखमय इस गृहस्थ में रहकर भी किस प्रकार वेद-वर्णित शान्त दैव-जीवन का मनुष्यमात्र को लाभ हो तथा प्राचीन ऋषियों की भाँति गृहस्थाश्रम में भी परम सुख, परम शान्ति तथा परमानन्द में रहा जा सके।

बड़े हर्ष की बात है कि पूज्य महाराज जी ने भक्तों की माँग को स्वीकार किया और श्री म ट्रस्ट की शुभाशीर्वाद सहित श्री म दर्शन ग्रन्थमाला के प्रकाशन और प्रचार करने की सानुग्रह अनुमति प्रदान कर दी।

अब यह शरीर सेवा करने के लिए धीरे-धीरे असमर्थ होता जा रहा है। श्री गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द जी ने 1975 में अपनी महासमाधि से पूर्व विश्वास दिलाया था, ''मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा। जब बुलाओगी तभी आ जाऊँगा।''

मैंने कहा, ''महाराज, गीत में तो है, 'सम्भव है झंझटों में मैं तुमको भूल जाऊँ, पर नाथ कहीं तुम भी मुझको न भुला देना।' यहाँ तो साधक में थोड़ा विश्वास है कि वह नहीं भूलेगा। तभी 'सम्भव' कहा। किन्तु महाराज, मैं तो निश्चय ही झंझटों में भगवान् को पुकारना भूल जाऊँगी। आपने सर्वदा हमारे पास रहने का वायदा किया है। एक कार्य और भी करना, सर्वदा हमें भगवान् को पुकारना, स्मरण रखना न भूलने देना।''

अब, उन्हें अशरीरी हुए प्राय: दस वर्ष हो गये हैं। किन्तु वे अपनी कृपा सर्वदा वर्षण कर रहे हैं।

....

अन्तर्यामी श्री भगवान् के श्रीचरणों में इस दीन सेविका की एकान्त प्रार्थना है कि सब भाई-बहनों का भगवान् में भक्ति और विश्वास बढ़े और संसार में परम सुख, परम शान्ति, परमानन्द लाभ हो।

(श्री म दर्शन-3, पृ० ix-xii 'निवेदन' से)

16

पुष्पांजलि

— स्वामी शिवसेवानन्द

रामकृष्ण मिशन-आश्रम, चण्डीगढ़ के विवेकानन्द-छात्रावास के पूर्व संचालक स्वामी शिवसेवानन्द जी का प्रथम मुलाकात में ही 'माँ' ईश्वरदेवी गुप्ता के प्रति आकर्षण हो गया था। और फिर वे कभी अकेले, कभी आश्रम में आए अन्य साधुओं के साथ 'माँ' से वह सब मिला जिसकी उन्हें साधु-जीवन में आवश्यकता थी।

— सं०

वर्ष 1989 में मैं बेलुड़ मठ से स्थानान्तरित होकर चण्डीगढ़ रामकृष्ण मिशन आश्रम आया। मुझे 'विवेकानन्द छात्रावास' के संचालन का कार्य सौंपा गया था। परन्तु इसका कोई अजाना उद्देश्य भी है, मैं इससे अनभिज्ञ था। यह मुझे कुछ वर्ष पश्चात् ही ज्ञात हुआ।

आश्रम में मेरा परिचय माता प्रवेश बजाज के साथ हुआ। वे स्वामी नित्यात्मानन्द जी की कृपा-प्राप्त थीं। उनसे परिचय से पूर्व मैं स्वामी नित्यात्मानन्द जी एवं श्री म ट्रस्ट के बारे में नहीं जानता था।

एक दिन माता प्रवेश बजाज अपनी कुछ 3-4 बान्धवियों के साथ आश्रम आईं। इन्हीं में एक सौम्यरूप, प्रेममूर्ति, सरल व शान्त माता थीं। पता नहीं क्यों मैंने उनको ही जाकर चरण छूकर प्रणाम किया, ''माँ प्रणाम।''

उन्होंने मुस्कुरा कर मेरी ओर देखा और कहा, ''स्वामी जी आपने प्रणाम क्यों किया?'

मैंने कहा, ''आप माँ हैं ना!''

''और ये सब?'' उन्होंने अन्य भक्त महिलाओं की ओर संकेत किया।

मैंने कहा, ''आप इनकी भी माँ हैं''। और वे खिलखिला कर हँस पड़ीं। ठाकुर-दर्शन के पश्चात् वे जब जाने लगीं, तो उन्होंने कहा, ''माँ से मिलने कब आ रहे हो?''

मैंने कहा, ''आपको सब पता है।'' उन्होंने कहा, ''पता मालूम है?'' मैंने कहा, ''वह पता चल जाएगा।''

वे गेट तक गईं। वहाँ झुककर आश्रम-द्वार को स्पर्श कर प्रणाम किया। पता नहीं क्यों इन माँ के साथ हुए इस छोटे से संवाद ने मुझे आन्दोलित कर दिया। ये हैं कौन? मैंने किसी से कुछ पूछा भी नहीं — क्या आकर्षण था यह? मैं मिला किससे?

बाद में हमारे कार्यालय से मुझे ज्ञात हुआ कि ये 'श्री म ट्रस्ट' की प्रधान ईश्वरदेवी जी हैं तथा सैक्टर 18 में रहती हैं। अगले दिन प्रात: ही मैं माता प्रवेश बजाज से मिला तथा पूर्ण जानकारी लेकर माँ ईश्वरदेवी जी के पास जा पहुँचा।

दरवाजा खुलने पर सामने ही माँ का दर्शन हुआ। मैंने चरण छूकर प्रणाम किया — माँ के चेहरे पर आनन्द स्पष्ट दिखाई दे रहा था। माँ ने मुझे आलिंगन में ले लिया। बहुत दिनों से बिछुड़े शिशु को पाकर जो आनन्द माँ को होता है, उसी अप्रतिम आनन्द का मुझे अनुभव हुआ।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते थे, ''जल और उसकी शीतलता, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अलग नहीं है''; वैसे ही आज साक्षात् देखा ईश्वर व उनकी ईश्वरी शक्ति भी तो एक है! क्या भगवान माँ से बड़े हो सकते हैं?

माँ के साथ बहुत देर तक वार्तालाप होता रहा। मैंने अपना पूरा परिचय दिया।

माँ ने तब पूछा, ''सो तो सब ठीक है, आये कैसे?'' मैंने माँ को संक्षेप

में सब बताया। माँ बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने कहा, ''मालूम है, What Lord Jesus has said — many will come, but few are chosen.''

''अच्छा, कैसे आए?''

मैंने कहा, ''रिक्शा से।''

तब माँ ने राजू रिक्शा वाले को बुलवाया और उसे दो पैकेट बिस्कुट तथा कुछ पैसे दिये, और मुझे भी बहुत कुछ दिया।

दर्शन की तृष्णा मिटी न थी, परन्तु लौटना था। मैं माँ की मधुर स्मृतियाँ लेकर आश्रम वापिस आ गया। शायद अदृश्य रूप से वे भी मेरे साथ आईं।

इसके बाद उनके दर्शन, उनकी कृपा तथा उनसे वार्तालाप का दौर प्रारम्भ हो गया। अनजाने में उस सबकी प्राप्ति होती रही, जिसकी मुझे साधु-जीवन में अत्यन्त आवश्यकता थी।

एक दिन माँ बोलीं,''ठाकुर ने कहा है — प्रभु पूरे दल-बल के साथ आते हैं। जैसे राम आये तो साथ में सीता, लक्ष्मण भी। कृष्ण के साथ राधा थीं, अर्जुन थे।'' फिर थोड़ा रुककर माँ ने कहा, ''नरेन्द्र-महेन्द्र बने दो खम्भे...'

मैंने कहा, ''और जब ठाकुर का काम पूरा करने नित्यात्मानन्द जी आए तो साथ में आए — गुप्ता जी और आप।'' मुस्कुराकर माँ बोली, ''पता नहीं, यह तो आप जानो।''

मैं माँ के दर्शन करता, लौट आता। फिर कब जाऊँ, इसकी प्रतीक्षा करता।

आश्रम में बेलुड़ मठ से तथा मिशन के अन्य केन्द्रों से साधु-संन्यासी आते रहते थे। इनमें कोई अधिक सम्पर्क वाले या मित्र होते तो मैं उनको माँ के दर्शन के लिये ले आता। अधिकतर ने श्री म ट्रस्ट व 'श्री म दर्शन' पुस्तकों के बारे में सुन रखा था। किसी-किसी ने श्री म दर्शन पढ़ा भी था। माँ सबसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न होतीं। आश्चर्य तो तब होता जब वे ऐसे मिलतीं जैसे हमारी ही प्रतीक्षा कर रही हों। कोई-कोई भक्त या साधु जो माता ईश्वरदेवी से परिचित नहीं थे या अनजान थे, वे यही समझ लेते कि मैं उन्हें अपनी माँ से मिलाने लाया हूँ।

हाँ, केवल मेरी ही नहीं, वे सबकी माँ थीं।

माँ से हुए वार्तालाप या उपदेशों को लिखना प्रारम्भ करूँ तो सम्भवत: एक ग्रन्थ बन जायेगा। हाँ, एक मर्मस्पर्शी घटना याद आ रही है: माँ अस्वस्थ चल रही थीं। मैं नहीं जानता था कि वे 3-4 दिनों से बातचीत भी नहीं कर रही हैं। मैं दर्शनों के लिए गया था। वे अपनी खाट पर थीं। मैं ठाकुर को प्रणाम कर माँ के पास गया। पास ही उनकी बेटी ऊर्मि दीदी दु:खी मन से खड़ी थीं। मुझे देखकर उन्होंने अत्यन्त दयनीय स्वर में कहा, ''महाराज, माँ 3-4 दिनों से इसी अवस्था में हैं। एक शब्द भी नहीं बोल रहीं। जो पूरा जीवन ठाकुर-माँ का नाम लेती रहीं, क्या अन्तिम समय में उनके मुख से ठाकुर का नाम नहीं निकलेगा?''

मैंने देखा, ऊर्मि दीदी की आँखें आसुओं से भर आई थीं। सम्भवत: हम नहीं जानते थे कि माँ की बहिर्जगत की यात्रा समाप्त हो चुकी है एवं अन्तर्जगत की यात्रा प्रारम्भ हो चुकी है। जिनको वे सब समय पुकारती थीं, उनके इष्ट, वे तो अब सामने खड़े थे, अब किसको बुलाना?

फिर भी मैंने साहस बटोरकर अत्यन्त करुणा से कहा, ''माँ, हमारी इच्छा पूरी करो। एक बार कहो ना, 'जय रामकृष्ण'।'' उन्होंने थोड़ी-सी आँख खोली और उनके चेहरे पर दिव्य आनन्द की झलक उभर आई। उन्होंने कहा, ''जय रामकृष्ण''। मैंने कहा, ''जय माँ''। उन्होंने भी कहा, ''जय माँ''। मैंने फिर कहा, ''जय स्वामी जी''। उन्होंने भी धीरे से कहा, ''जय स्वामी जी'' और फिर आँख बन्द। ऊर्मि दीदी आश्चर्य से यह सब देख रही थीं। वे प्रसन्न हुईं।

इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् 26 मई, 2002 को, सन्ध्या समय मुझे समाचार मिला — माँ की अन्तिम अवस्था है। मैं शीघ्र ही गया। वे अपने निकटवर्ती प्रियजनों से घिरी थीं। मैंने प्रणाम किया। उन्होंने मुझ पर कृपा-दृष्टि की। यह अन्तिम मिलन था। उसी रात सम्भवत: 8 बजे उन्होंने अन्तिम साँस ली।

अब देरी कैसी? यात्रा पूर्ण हो चुकी थी — 'वे' स्वयं जो लेने आए थे।

●

17

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की कतिपय कविताएँ

— श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द के संग रहीं लगभग 16 वर्ष तक (सन् 1958 से 1975 तक)। इस सुदीर्घ काल में अपने गुरु के संग रहते-रहते उनकी मन:स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। महाराज जी से मिलने के लगभग पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1963 में तो वे उन्मनी-सी रहने लगीं — हर समय जैसे इस जगत से दूर, कहीं और खोई हुई — भाव में। उन्हीं दिनों उन्होंने अनेक मनोभाव, विचार कविताबद्ध किए।

— सं०

-1-

श्रीमती गुप्ता द्वारा रचित गीत भी उन्हीं दिनों (16 मई, 1964) का है। तब वे बाह्य रूप से थीं उन्मादवत् पर भीतर से आनन्द ही आनन्द। वे यूँ रहतीं जैसे प्रतिपल हों माँ के अंग-संग, जैसे वे हों माँ के चरणों का नूपुर।

नूपुर तेरे चरणों का

नूपुर तेरे चरणों का, मैं यदि बन पाऊँ माँ।
तेरे चरण की हर गति के संग-संग बज पाऊँ माँ॥

तेरे कदम की हर झंकार में, मन मेरा बज जाए माँ।

इसी तरह दिन-रात के संग से, भेद तुम्हारा पाऊँ माँ॥

तुम हो कौन, मैं हूँ कौन, खोज यदि पा जाऊँ माँ।
नूपुर-गति से दूर रहूँ तब, मौन गीत सुन पाऊँ माँ॥

-2-

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस कहा करते कि बहुत बड़े मैदान में खड़े होने से, बहुत बड़ी झील देखने से ईश्वर का उद्दीपन होता है, उसकी विराटता, विशालता का आभास होता है।

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज भी अपनी अन्तरंग शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को ब्रह्ममुहूर्त में, सन्ध्या में, रात्रि में — सब समय, जब कभी भी अवसर मिलता, प्रकृति की छटा दिखाया करते जिससे वे भी उस विराट् के, ईश्वर के दर्शन कर सकें जिसकी अभिव्यक्ति सौर मण्डल में, आकाश में, सागर में, पर्वत में — समस्त प्रकृति में हो रही है। यही भाव इस कविता में अभिव्यक्त है।

विशाल में विचरण करो

विशाल में विचरण करो, विराट् जान लो
सौरमण्डल देख लो, समुद्र आँक लो,
पाताल खोज लो, आकाश ढूँढ लो।
विराट् जान कर प्रिये, हृदय उदार हो,
हृदय उदार हो चुका तो रूप और हो।
विशाल में विचरण करो, विराट् जान लो।

सेवा-रूप में खड़ा तब स्वयं ब्रह्म हो,
धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सकल बस में हों।
विशाल में विचरण करो, विराट् जान लो।

अर्थ रूप माँ तेरी, काम बाप हो
धर्म आचरण करो, मोक्ष ज्ञान हो
श्राप ही वरदान हो, न दुःख ताप हो
विशाल में विचरण करो, विराट् जान लो।

— नूपुर-1997, पृ० 115-16

-3-

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता कहती थीं — श्री म दर्शन मेरी माँ हैं। इसी के माध्यम से, और इसी के कार्य के लिए मुझे मिले थे महाराज जी। 'माँ' श्री म दर्शन की महिमा का गान करते हुए उनकी कविता :

'श्री म दर्शन' — सच्ची माँ

'श्री म दर्शन' घर में रहती, नित्य प्रति वह हमसे कहती।
बच्चो सुन लो बात हमारी, कथामृत है 'माँ' हमारी॥ १॥

ठाकुर-माँ हैं मुझको प्यारे, इनके बालक अजब न्यारे।
जो जन इनकी सेवा करता, निश्चय ही भवसागर तरता॥ २॥

पहले जल्दी-जल्दी पढ़ लो, पीछे बैठ रोमन्थन कर लो।
ठाकुर-चिन्तन मुझको प्यारा, माँ-संकीर्तन भेद हमारा॥ ३॥

तीन चित्र हैं इसमें लखते, प्रेमी-योगी-भोगी बसते।
तीन शरीर का रूप दिखाती, अमृत का सन्धान बताती॥ ४॥

अलग-अलग इन सबको देखो, एक घटि में सब रंग पेखो।
जो थे राम, जो थे कृष्ण — वे ही हुए अब रामकृष्ण॥ ५॥

हिन्दु-मुस्लिम-सिख-ईसाई, मेरे गुणों की करें बड़ाई।
गीता-बाइबल-चण्डी-कुरान, रामायण-महाभारत, वेद-पुराण॥ ६॥

गुरु-ग्रन्थ-गायत्री-कथामृत, साधुसंग-प्रसाद-चरणामृत।
सब के सब ही मीठे लगते, रामकृष्ण के चित्र जब अंकते॥ ७॥

नाना गीत, नाना कविताएँ, नाना चित्र, नाना बतिकाएँ।
यह 'श्री म दर्शन' हमें सुझाती, गोपन धन की राशि ठेलाती॥ ८॥

आओ बच्चो पढ़ें पढ़ाएँ, गुरुजनों से प्रीत लगाएँ।
इनके चरणों में सब ज्ञान, इनमें दे दो मन औ' प्राण॥ ९॥

एक धन्य भारत में आए, दो धन्य मानुष तन पाए।
तीन धन्य ठाकुर-संग आए, चार धन्य इस माँ को पाए॥ १०॥

पाँच धन्य गुरु सुयोग दिलाए, छः धन्य मन-प्राण जगाए।
पहले बुद्धि को समझा लो, इसके चित्रों से सुलझा लो॥ ११॥

उलझे हुए का काम न होगा, सुलझा जो वही धन्य होगा।
स्थूल देह से पार न होगा, सूक्ष्म देह भी भार ही होगा॥ १२॥

यों तो शास्त्र पढ़ें पढ़ावें, उनमें बालू-चीनी पावें।
इसमें बालू का नाम नहीं है, अमर मिश्री का ढेर यहीं है॥ १३॥

धर्म-धर्म सब ही चिल्लाते, धर्म का असली भेद न पाते।
'जन्म-मृत्यु में संग जो रहता, अब भी संग है' धर्म बताता॥ १४॥

'आगे ईश्वर' धर्म कराता, 'परे सब' यह भेद बताता।
आओ बच्चो गीत सुनाएँ, 'श्री म दर्शन'-गीत लो गाएँ॥ १५॥

वृद्ध को बालक गीत बनाता, परमहंस तब नाम दिलाता।
'श्री म दर्शन' संग में रखो, बनो, दिखाओ, मेवा चखो॥ १६॥

●

18

पत्र/Letters

— ईश्वरदेवी गुप्ता के पत्र स्वामी नित्यात्मानन्द के नाम

I.

सन् 1960 से स्वामी नित्यात्मानन्द अपनी अन्तरंग शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के परिवार के साथ उनके यहाँ ही रहते। जब कभी वे बाहर जाते, श्रीमती गुप्ता का उनके साथ पत्र-व्यवहार चलता रहता। नित्यप्रति के समस्त क्रिया-कलापों की, घर-परिवार की, भक्तों की, ट्रस्ट-कार्य की, पूजा आदि की, शरीर-मन की सभी बातें पत्र में होतीं। स्वामी जी भी पत्रोत्तर देते बराबर। उनके ये पत्र प्रत्येक साधक के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं।

श्रीमती गुप्ता द्वारा स्वामी जी को लिखा गया ऐसा ही एक पत्र :

—सं०

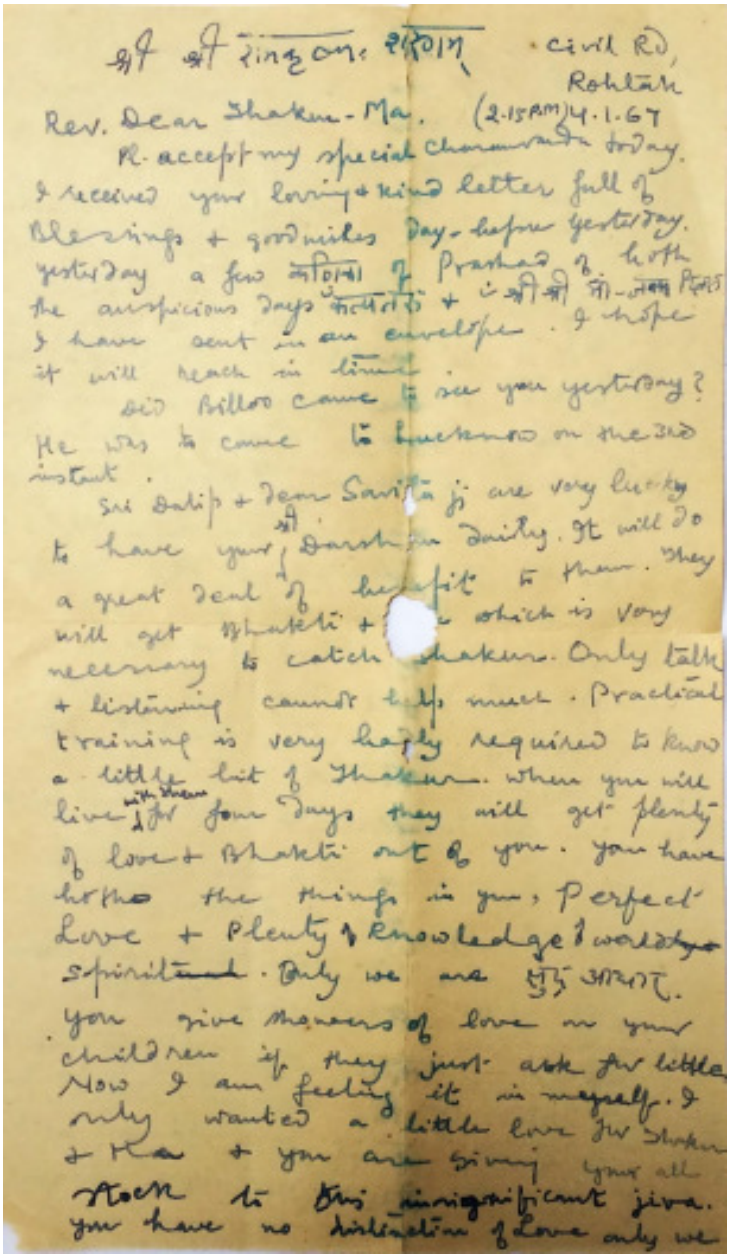

श्री श्री रंगनाथः शरणम्   Civil Rd,
Rohtak
Rev. Dear Thakur-Ma.   (2.15AM) 4.1.67
Pl. accept my special charansparsh today.
I received your loving + kind letter full of Blessings + goodwishes Day-before yesterday. yesterday a few कणिका of Prashad of both the auspicious days कल्पतरु + [illegible] श्री श्री [illegible] I have sent in an envelope. I hope it will reach in time.
Did Billoo came to see you yesterday? He was to come to Lucknow on the 3rd instant.
Sri Dalip + Dear Savita ji are very lucky to have your श्री Darshan Daily. It will do a great deal of benefit to them. They will get Bhakti + [illegible] which is very necessary to catch Thakur. Only talk + listening cannot help much. Practical training is very badly required to know a little bit of Thakur. when you will live with them for four days they will get plenty of love + Bhakti out of you. You have both the things in you, Perfect Love + Plenty of knowledge of worldly + spiritual. Only we are कुछ अभागा. You give showers of love on your children if they just ask for little. Now I am feeling it in myself. I only wanted a little love for Thakur + Ma + you are giving your all stock to this insignificant jiva. You have no distinction of Love only we

श्री श्रीरामकृष्ण शरणम्

Civil Road, Rohtak
(2.15 P.M.) 4-1-1967

Rev. Dear Thakur-Ma[1],

Pl. accept my special Charanvandana today. I received your loving and kind letter full of Blessings & good wishes day-before yesterday. Yesterday a few कणिका (particles) of Prasad of both the auspicious days ँकल्पतरु and ँश्री श्री माँ जन्म-दिवस I have sent in an envelope. I hope it will reach in time.

Did Billoo[2] come to see you yesterday? He was to come to Lucknow on the 3rd instant.

Sri Dalip and dear Savitaji are very lucky to have your श्री Darshan daily. It will do a great deal of benefit to them. They will get Bhakti and love which is very necessary to catch Thakur. Only talk & listening cannot help much. Practical training is very badly required to know a little bit of Thakur. When you will live with them for four days they will get plenty of love and Bhakti out of you. You have both the things in you, Perfect Love and plenty of knowledge of world and spirit. Only we are क्षुद्र आधार. You give showers of love in your children if they just ask for little. Now I am feeling it in myself. I only wanted a little love for Thakur and Ma and you are giving your all stock to this insignificant jiva. You have no distinction of Love. Only we,

1 Smt. Gupta addressed Swamiji as 'Maa' or 'Thakur-Maa'.
2 Smt. Gupta's eldest son-in-law.

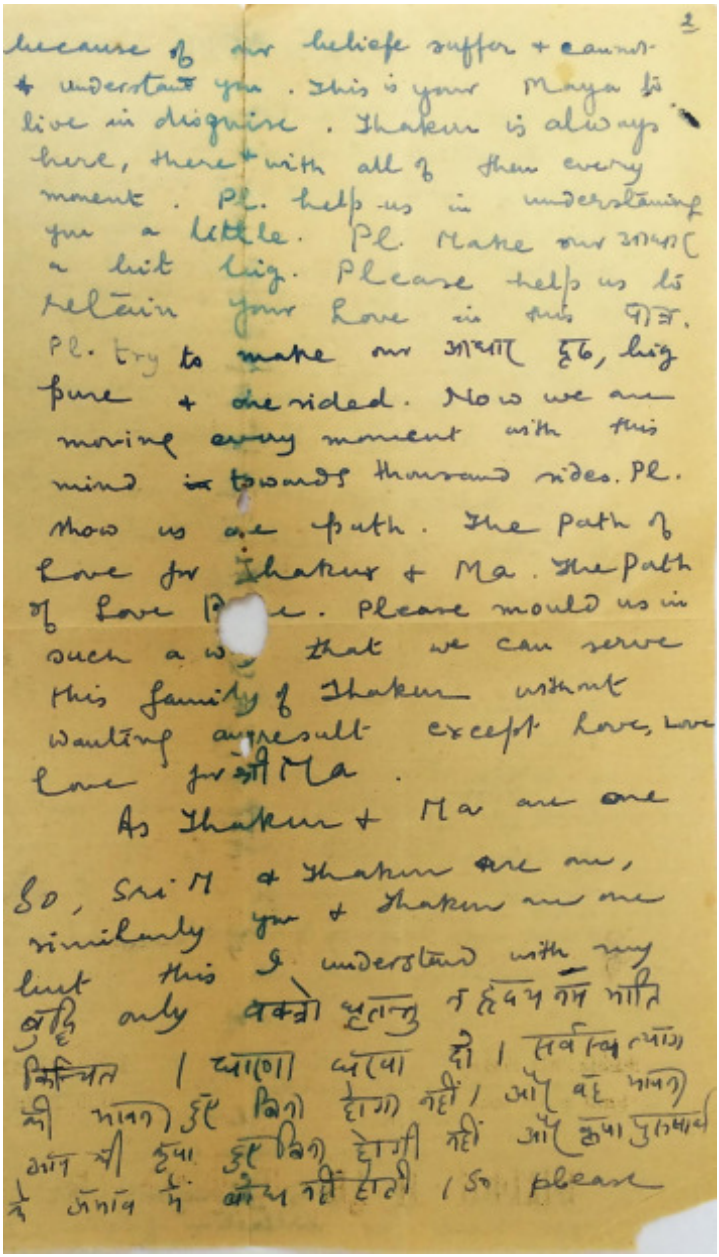

2

because of our beliefs suffer + cannot
+ understand you. This is your Maya to
live in disguise. Thakur is always
here, there + with all of them every
moment. Pl. help us in understanding
you a little. Pl. Make our आधार
a bit big. Please help us to
retain your Love in this पात्र.
Pl. try to make our आधार [illegible], big
pure + one sided. Now we are
moving every moment with this
mind towards thousand sides. Pl.
show us one path. The path of
Love for Thakur + Ma. The path
of Love P[illegible]e. Please mould us in
such a w[illegible] that we can serve
this family of Thakur without
wanting any result except Love, Love
Love for श्री Ma.
As Thakur + Ma are one
So, Sri M + Thakur are one,
similarly you + Thakur are one
this I understand with my
limit this
बुद्धि only वक्त्रो भूतानु न हृदयगम नाति
किञ्चित। साधना करना है। सर्वत्याग
भी साधना हुए बिना होगा नहीं। और वह साधना
आप की कृपा हुए बिना होगी नहीं और कृपा पुरुषार्थ
के अभाव में कभी नहीं होती। So please

because of our belief, suffer and cannot understand you. This is your Maya to live in disguise. Thakur is always here, there and with all of them every moment. Please help us in understanding you a little. Please make our आधार a bit big. Please help us to retain your Love in this पात्र. Please try to make our आधार दृढ़, big, pure and onesided. Now we are moving every moment with this mind towards thousand sides. Please show us our path. The Path of Love for Thakur and Ma. The Path of Love Pure. Please mould us in such a way that we can serve this family of Thakur without wanting any result except love, Love, Love for श्री Ma.

As Thakur and Ma are one, so Sri M. and Thakur are one, similarly you and Thakur are one, but this I understand with my बुद्धि only— वक्त्रोधृतन्तु हृदि मे न च भाति किञ्चित् — धारणा धरवा दो। सर्वस्व त्याग की भावना हुए बिना होगा नहीं। और वह भावना आपकी कृपा हुए बिना होगी नहीं और कृपा पुरुषार्थ के अभाव में बोध नहीं होती। So please

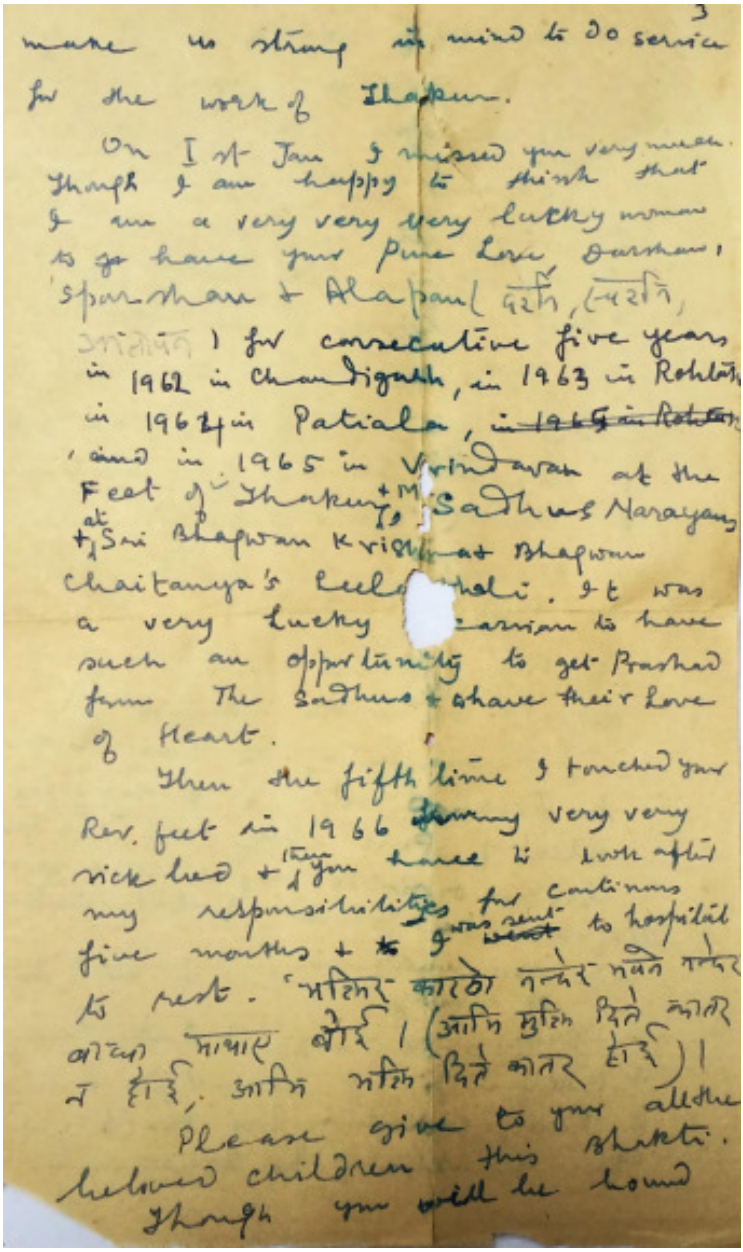

3

make us strong in mind to do service for the work of Thakur.

On Ist Jan I missed you very much. Though I am happy to think that I am a very very very lucky woman to go have your Pure Love, Darshan, Sparshan & Alapan (দর্শন, স্পর্শন, আলাপন) for consecutive five years in 1962 in Chandigarh, in 1963 in Rohtak, in 1964 in Patiala, ~~in 1965 in Rohtak~~, and in 1965 in Vrindavan at the Feet of Thakur + M/s Sadhus Narayan at Sri Bhagwan Krishna at Bhagwan Chaitanya's Leela [illegible] It was a very lucky [illegible] to have such an opportunity to get Prashad from The Sadhus & share their Love of Heart.

Then the fifth time I touched your Rev. feet in 1966 [illegible] very very sick bed & then you [illegible] to look after my responsibilities for continuous five months & I was sent ~~went~~ to hospital to rest. [illegible]

Please give to your all the beloved children this Shakti. Though you will be bound

make us strong in mind to do service for the work of Thakur.

On 1st Jan., I missed you very much. Though I am happy to think that I am a very very very lucky woman to have your Pure Love, Darshan, Sparshan and Alapan (दर्शन, स्पर्शन और आलापन) for consecutive five years in 1962 in Chandigarh, 1963 in Rohtak, in 1964 in Patiala, in 1965 in Vrindavan at the Feet of Thakur & M., Sadhus-Narayans & at Sri Bhagawan Krishna and Bhagawan Chaitanya's Leelasthali. It was a very Lucky occasion to have such an opportunity to get Prasad from the sadhus & to have their Love of Heart.

Then the fifth time I touched your Rev. feet in 1966 from my very very sick bed and then you had to look after my responsibilities for continuous five months and I was sent to hospital to rest. 'भक्तिर कारणे नन्देर भवने नन्देर बाधा माथाय बोई।' (आमि मुक्ति दिते कातर न होई, आमि भक्ति दिते कातर होई)।

Please give to your all the beloved children this Bhakti. Though you will be bound

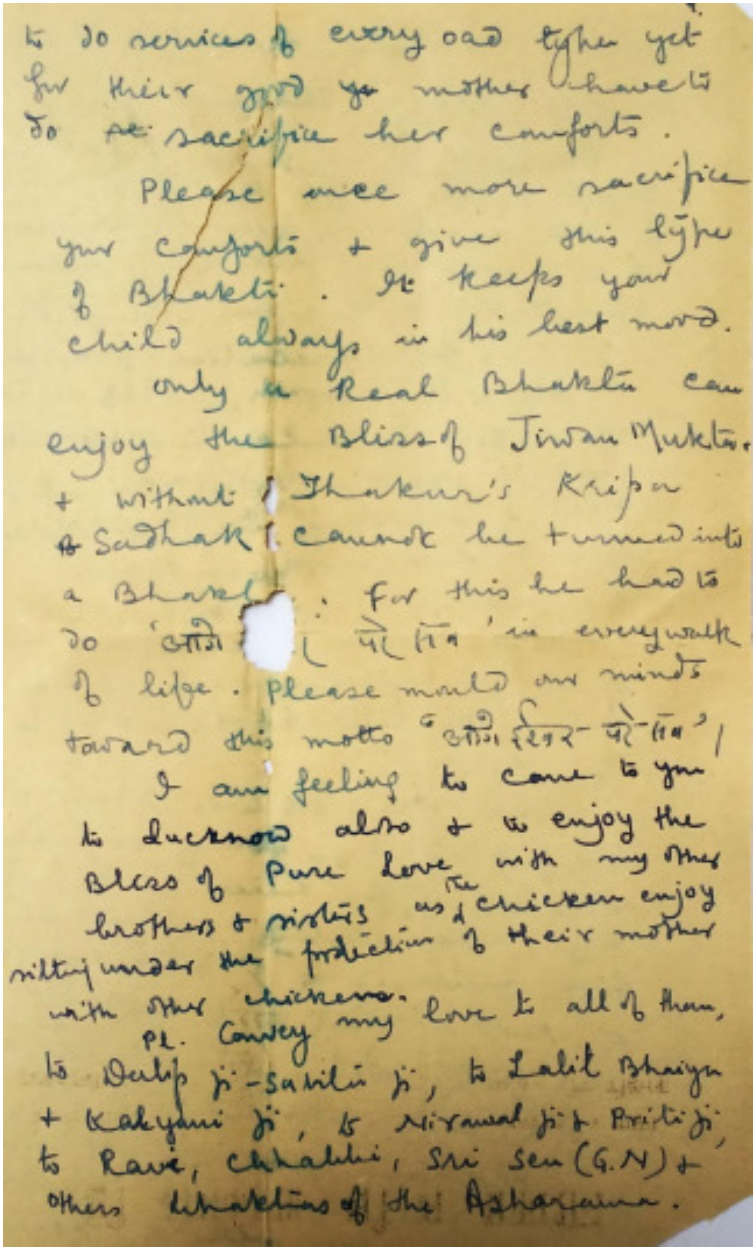

to do services of every odd type yet
for their good mother have to
do sacrifice her comforts.
Please once more sacrifice
your comforts & give this type
of Bhakti. It keeps your
child always in his best mood.
Only a Real Bhakta can
enjoy the Bliss of Jiwan Mukti.
& without Thakur's Kripa
a Sadhak cannot be turned into
a Bhakta. For this he had to
do 'औरों [illegible] पे तिन' in every walk
of life. Please mould our minds
toward this motto 'औरों सिर पे तिन'।
I am feeling to come to you
to Lucknow also & to enjoy the
Bliss of Pure Love with my other
brothers & sisters as the chicken enjoy
sitting under the protection of their mother
with other chickens. Pl. convey my love to all of them,
to Dalip ji - Sabili ji, to Lalit Bhaiya
& Kalyani ji, to Nirmal ji & Priti ji,
to Ravi, Chhabbi, Sri Sen (G.N) &
others Bhaktas of the Ashrama.

to do services of every odd type yet for their good, mother has to do sacrifice her comforts.

Please once more sacrifice your comforts and give this type of Bhakti. It keeps your child always in his best mood.

Only a Real Bhakta can enjoy the Bliss of Jiwan Mukta and without Thakur's Kripa Sadhak cannot be turned into a Bhakta. For this he has to do 'आगे ईश्वर परे सब' in every walk of life. Please mould our minds towards this motto 'आगे ईश्वर परे सब'।

I am feeling to come to you to Lucknow also and to enjoy the bliss of Pure Love with my other brothers and sisters as the chicken enjoy sitting under the protection of their mother with their chicken.

Please convey my love to all of them, to Dalipji, Sabitaji, to Lalit Bhaiya and Kalyaniji, to Nirmalji and Pritiji, to Ravi, Chhabi, Sri Sen (G.N.) and other bhaktas of the Ashrama.

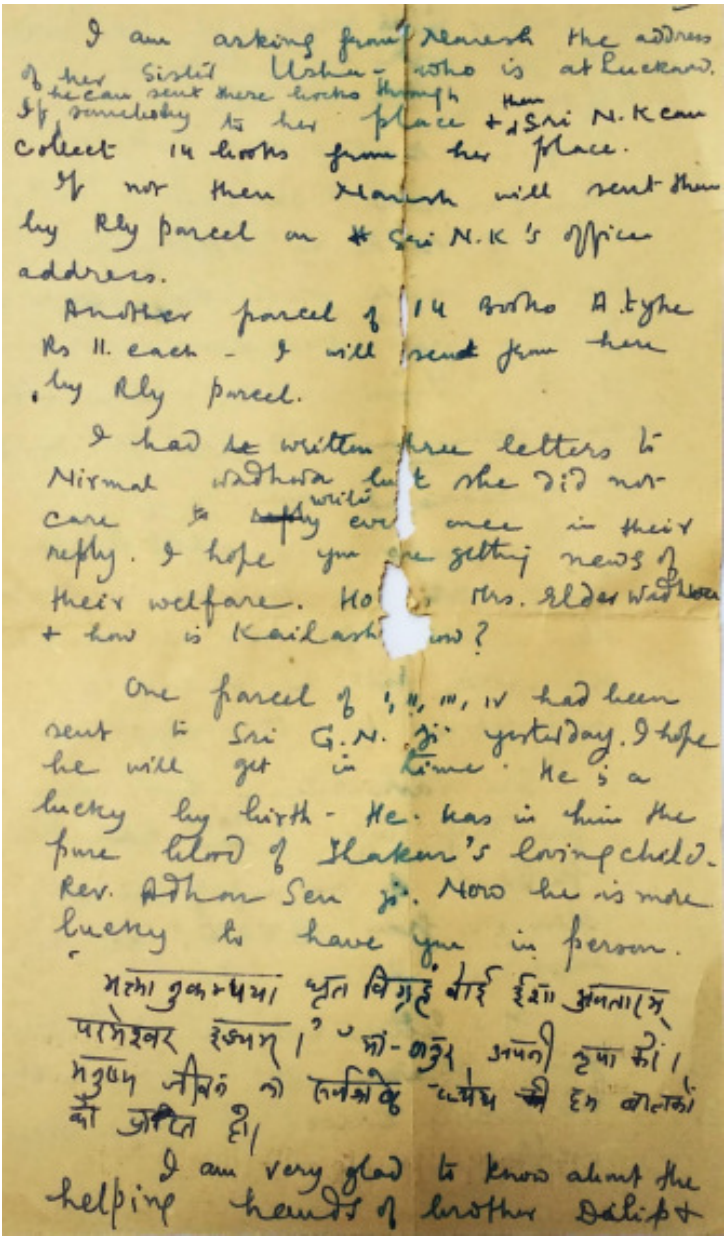

I am asking from Naresh the address of her sister Usha - who is at Lucknow. If somebody [he can sent there books through] to her place + then Sri N.K can collect 14 books from her place.

If not then Naresh will sent them by Rly parcel on ~~#~~ Sri N.K's office address.

Another parcel of 14 books A type Rs 11. each - I will send from here by Rly parcel.

I had ~~to~~ written three letters to Nirmal Wadhwa but she did not care to ~~reply~~ write even once in their reply. I hope you are getting news of their welfare. How is Mrs. Elder Wadhwa + how is Kailash now?

One parcel of I, II, III, IV had been sent to Sri G.N. ji yesterday. I hope he will get in time. He is a lucky by birth - He has in him the pure blood of Thakur's loving child Rev. Adhar Sen ji. Now he is more lucky to have you in person.

महात्मा गुरुनामा भूत विग्रहे [illegible] ईश्वर अनन्तात्म परमेश्वर [illegible]। माँ - ठाकुर अपनी कृपा करें। मनुष्य जीवन को [illegible] इन बातों को [illegible] है।

I am very glad to know about the helping hands of brother Dalip +

I am asking from Naresh the address of her sister Usha who is at Lucknow. If he can send these books through somebody to her place & then Sri N.K. can collect 14 books from her place. If not, then Naresh will send them by Rly parcel on Sri N.K.'s office address.

Another parcel of 14 books A type Rs. 11 each— I will send from here by Rly parcel.

I had written three letters to Nirmal Wadhwa but she did not care to write even once in their reply. I hope you are getting news of their welfare. How is Mrs. Elder Wadhwa & how is Kailash now?

One parcel of I, II, III, IV had been sent to Sri G.N. ji yesterday. I hope he will get in time. He is a lucky by birth. He has in him the pure blood of Thakur's loving child, Rev. Adhar Sen ji. Now he is more lucky to have you in person.

'भक्तानुकम्पया धृतविग्रहं वै ईशावतारं परमेशमीड्यम्' माँ ठाकुर अपनी कृपा करें। मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ ध्येय हम बालकों को प्राप्त हो।

I am very glad to know about the helping hands of brother Dilip &

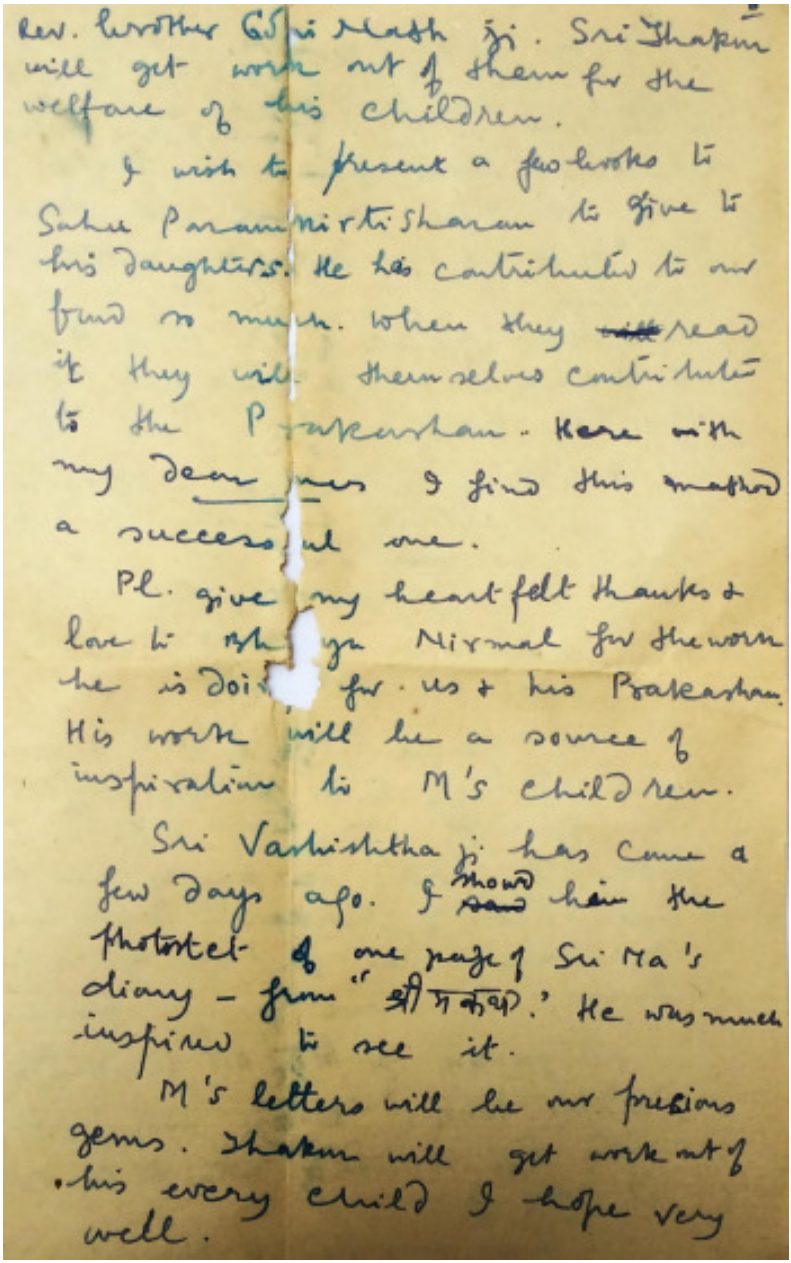

Rev. brother G. Sri Nath ji. Sri Thakur
will get work out of them for the
welfare of his children.

I wish to present a few books to
Sahu Param Nirti Sharan to give to
his daughters. He has contributed to our
fund so much. When they ~~will~~ read
it they will themselves contribute
to the Prakashan. Here with
my dear ones I find this method
a successful one.

Pl. give my heartfelt thanks &
love to Bhaiya Nirmal for the work
he is doing for us & his Prakashan.
His work will be a source of
inspiration to M's children.

Sri Vashishtha ji has come a
few days ago. I ~~saw~~ showed him the
photostat of one page of Sri Ma's
diary – from "श्री म कथा." He was much
inspired to see it.

M's letters will be our precious
gems. Thakur will get work out of
his every child I hope very
well.

Rev. brother Gopi Nathji. Sri Thakur will get work out of them for the welfare of his children.

I wish to present a few books to Sahu Paramkirti Sharan to give to his daughters. He has contributed to our fund so much. When they read it, they will themselves contribute to the Prakashan. Here, with my dear ones, I find this method a successful one.

Pl. give my heartfelt thanks & love to Bhaiya Nirmal for the work he is doing for us & his Prakashan. His work will be a source of inspiration to M.'s children.

Sri Vashishtha ji has come a few days ago. I showed him the photostat of one page of Sri Ma's diary— from 'श्री म कथा'. He was much inspired to see it.

M.'s letters will be our precious gems. Thakur will get work out of his every child I hope very well.

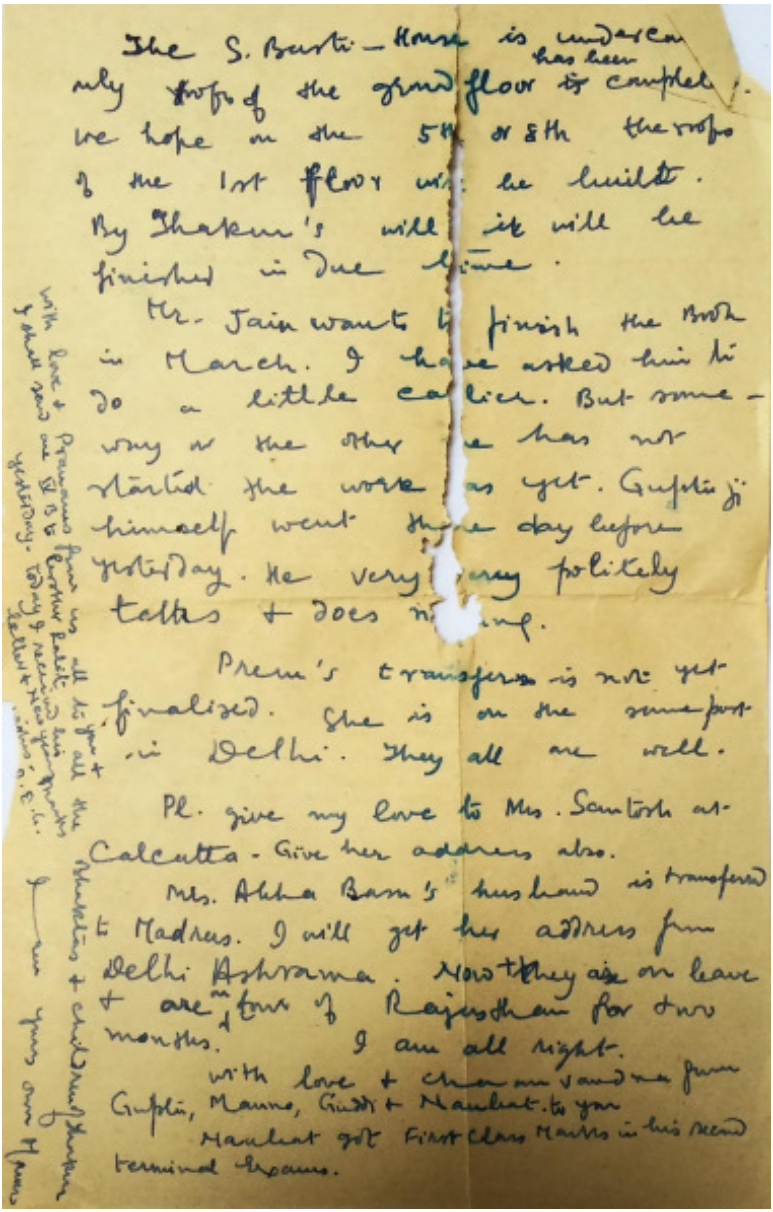

The S. Burti – House is under construction. has been only roofs of the ground floor is complete. We hope on the 5th or 8th the roofs of the 1st floor will be built. By Thakur's will it will be finished in due time.

Mr. Jain wants to finish the Book in March. I have asked him to do a little earlier. But some-way or the other he has not started the work as yet. Guptaji himself went there day before yesterday. He very very politely talks + does nothing.

Prem's transfer is not yet finalized. She is on the same post in Delhi. They all are well.

Pl. give my love to Mrs. Santosh at Calcutta. Give her address also.

Mrs. Abha Basu's husband is transferred to Madras. I will get her address from Delhi Ashrama. Now they are on leave + are on tour of Rajasthan for two months.

I am all right.

With love + Charanvandana from Gupta, Mauna, Guddi + Maulant to you.

Maulant got First Class Marks in his second terminal Exams.

With love + Pranams from us all to you + all the Bhaktas + children of Thakur. [illegible] Brother Bakshi's [illegible] yesterday. Today I received [illegible] letter + New Year greetings [illegible]

Yours own Mauna

The S. Basti House is under construction. Only roofs of the ground floor has been completed. We hope on the 5th or 8th the roofs of the 1st floor will be built. By Thakur's will it will be finished in due time.

Mr. Jain wants to finish the Book in March. I have asked him to do a little earlier. But some way or the other he has not started the work as yet. Guptaji himself went there day before yesterday. He very very politely talks & does nothing.

Prem's* transfer is not finalized. She is on the same post in Delhi. They all are well.

Pl. give my love to Mrs. Santosh at Calcutta. Give her address also.

Mrs. Abha Basu's husband is transferred to Madras. I will get her address from Delhi Ashrama. Now they are on leave & are on tour of Rajasthan for two months.

I am all right.

With love and Charan-vandana from Guptaji, Manno, Guddi and Naubat to you.

Naubat got First class marks in his second terminal Exams.

With love and Pranams from us all to you and all the Bhaktas and children of Thakur.

I shall send one IV B to brother Lalit. Yesterday-Today I received his letter and New Year wishes.

Thanks. I.D.G.

I am,
yours own
Manno

* Smt. Ishwar Devi Gupta's eldest daughter.

II.

श्री श्रीरामकृष्ण शरणम्
Civil Road, Rohtak
18-09-1964

मेरी माँ, जय माँ जय माँ,

ठाकुर-माँ कृपा अनन्त है। आपका आशीर्वाद पत्र कल शाम की डाक में मिला। ठाकुर-कृपा-इच्छा से आप ठीक समय पर अमृतसर पहुँच गये तथा प्रिय कृशी आपको लेने अपनी नई कार में गए, इसकी बहुत ही अधिक खुशी है। ठाकुर की इच्छा से ही सब कार्य हो रहा है। उन्हें मेरी याद और नमस्ते निवेदन करें।

आपका चण्डीगढ़ आने का कब का प्रोग्राम है?... मेरा मन भी आपके चरणों में रहने का है। ठाकुर-इच्छा होगी तो अवसर हो जाएगा।... श्री म दर्शन के लिए हांडू साहब आते हैं। ... Mr. Goswami सुना तो है देहली 'राजकमल प्रकाशन' तथा अन्य एक दो जगहों पर श्री म दर्शन publishing के लिए गये थे।... प्रो. हांडू आपको प्रणाम कहते थे, याद भी

कर रहे थे। कह रहे थे, मेरे पास शिलाजीत है, स्वामी जी के लिए। इससे उनके जोड़ों का दर्द ठीक हो जाएगा। पूछ रहे थे यहाँ कब आएँगे।

भैया अभय को आपने Bengali Printing का charge दे दिया है सो बहुत ही अच्छा हुआ है। ठाकुर उन्हें पूरा निभाने की शक्ति दें। बड़े भाग्य से कोई जीव माँ की आज्ञा पालन कर पाता है। तभी वह जीव शिव बनता है नहीं तो यही जन्म मरण चक्कर में गिरता रहता है। अन्तिम जन्म के निकट आयेगा तभी माँ को समझेगा। माँ को समझकर ही तो उसके प्यार को पहचानेगा। नहीं तो केवल रोग में Doctor की call सी ही रह जाती है। माँ ही पहचनवायें तो जीव पहचाने, नहीं तो किसकी साध्य जो उसे जाने?

माँ-दर्द को कुछ आराम है, जानकर बहुत सन्तोष मिला। ठाकुर-माँ से माँ की सेहत के लिए प्रार्थना है। 'न' का पत्र इधर भी नहीं आया। आपके पास तो उसको लिखना ही चाहिए। माँ आप ही उसे सिखाएँगे तब वह सीखेगी। हम तो केवल भूख में रोना ही जानते हैं, भरे पेट आनन्द मनाना तो वही जानता है जिसे माँ विशेष रूप से सिखाती हैं। यही विश्वास तो माँ की परम कृपा है कि 'सदा म्यूं-म्यूं करे केवल'। माँ-प्यार बिना यह भाव नहीं आता। शरीर का प्यार जाए तो माँ-प्यार आए। कितना कष्ट हम पाते हैं फिर भी माँ को प्यार नहीं कर पाते। हमारी प्रकृति ही हमसे ऐसा कराती है। माँ मोड़ फिरा दे तो प्रकृति कुछ न कर सकेगी।

मेरा शरीर ठीक है। श्री गुप्ता जी, मीरा आपको याद करते हैं तथा प्यार, वन्दना कहते हैं। अपना प्रोग्राम भी लिखने की कृपा करें। शरीर अब कैसा है? दान्त कब लगेंगे? इधर भी बच्चे याद में तड़प रहे हैं। ठाकुर ही माँ से दूर करे रखते हैं। वे ही मिलाते भी हैं। सबको मेरा प्रणाम।

चरणों में,
मन्नो

Swami Nityatmananda,
C/o Mr. D.N. Wadhwa,
4, Circular Road,
Amritsar.

— Swamiji's Letter to Smt. Ishwar Devi Gupta

III.

इतनी सुयोग्य, गुरु-काज, ठाकुर-काज के लिए समर्पित श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता भी कभी-कभी निरुत्साहित हो जातीं। ऐसे में उनके गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द किस प्रकार उनका मनोबल बढ़ाते, यह पत्र उसी का एक सजीव उदाहरण है।

— सं०

Sri Sri Ramakrishna Sharanam
10-July-1968, 11 A.M.
Swami Nityatmananda
C/o Sri V.P. Prabhakar,
Khaliar, Mandi (H.P.)

My dear Mummy,*

Thakur is gracious. May He bless you and all! After 15 days, I am writing to you. Thanks for your 2nd big letter of 15-June and 21-June, and also your previous letter of 12-June. I have written to you earlier about the letter of 12-June. With

* सन् 1964 से महाराज जी श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को बच्चों की देखा-देखी 'मम्मी' कहने लगे थे।

disturbed mind, I could not reply that then. Now I have finished that, also read the inspiring letter of 15th and 21st; also cards of 23-June and 27-June. All these letters I treasure as Ma Thakurani's *Prasad.* I have not forgotten that it was Ma who brought you to Hoshiarpur to take care of me when I was 90% unconscious due to the terrible disease of 1964. From that time onward it was Holy Mother and Thakur who have made you their blessed instrument to take care of my body, and also of my mind and work.

In your card of 23-June, your self-criticism: "Sometimes I felt unworthy, too small and incompetent for this post of big institution" has pained me. For according to Thakur Ma and M.— you are the only fit person for this sacred job. It is not the intellect or worldly capability that is required for serving God and Thakur. Swamiji, the King of intellect put the value of human intellect at one pice. Faith and faith is needed in God and oneself, and sacrifice and sacrifice which makes one fit for God's service. Christ's disciples were almost illiterate and yet they shook the world. Said Swamiji: renunciation and service, this is the only wealth that is required for Thakur's service. Swamiji left the charge of his Math and Mission in the hands of his faithful and god-realised guru-bhais, not to his own talented disciples. Latu Maharaj and Khoka Maharaj and his God-intoxicated other guru-bhais were the fittest persons. Devoted and faithful bhakta-lawyers were their advisors, but not the intelligent and inexperienced lawyers. Books, the Prakashan and Trust, nothing could have come into existence but for you, a sacred instrument of the Holy Mother and Thakur. Guru Gobind Singh's "Pancha Piaras" were all mountains of faith, but not worldly-wise intellects.

Gupta ji's mental pressure I can feel. But in accepting at heart, God first and world second, all have to pass through

this stage— this conflict of values. Thakur is with him, love and blessings of sadhus are with him. He will surely succeed in having victory over worldly wisdom; being favoured with unshakable faith and sacrifice by Thakur, Ma and M.

Love and blessings to you all.

Affectionately,
Swamiji

PS: While posting this card I got your and Gupta ji's letter of 5-July, 1968. Could not read; took Prasad. I will reply later. I got all letters of 1-July, 3-July. Your decision is my decision, as my decision is your decision, for this is Thakur Ma' decision.

— Noopur-2005, pg. 25-27

— ईश्वरदेवी गुप्ता का 'पापा' जी को लिखा पत्र

IV.

ठाकुर कहते हैं — ''एक हाथ से भगवान को पकड़े रखो और दूसरे हाथ से संसार का समस्त कार्य करो। समय होने पर अर्थात् जब बेटी का ब्याह हो जाए और बेटा अपने पैरों पर खड़ा हो जाए तो दोनों हाथों से भगवान को पकड़ लो।'' यही सन्देश इस पत्र में अभिव्यक्त है।

— सं०

श्री श्रीरामकृष्ण शरणम्

श्रीमती आई०डी० गुप्ता
C/o श्री वी०पी० प्रभाकर, XEN
मण्डी (हिमाचल)

प्रातः दस, 4-8-1967

परम प्रिय पापा,

सप्रेम सादर नमस्कार। याद। आपका 30-7 का पत्र 2-8 को मिल गया।

प्रिय गुड्डी का अत्यन्त प्यारा और शान्तभाव से श्री श्री ठाकुरस्वामी जी तथा अन्य शुभानुध्यायियों का धन्यवाद और कृपा-कृतज्ञतापूर्ण पत्र, 31-7-67 शाम 7.10 का लिखा पत्र, कल यथासमय मिला।

दोनों पत्र यहाँ सत्संग, साधुसंग, गुरुसंग-सभा में पढ़े गए। कई बार।

तीन बार तो अवश्य। कल राज विरमानी का पत्र भी अमृतसर से आया। उसने English की 16 books बेच दी हैं। मायावती ठाकुर-आश्रम तीर्थ-दर्शन करके आई हैं। यहाँ मण्डी-आश्रम के विषय में लिखा है :

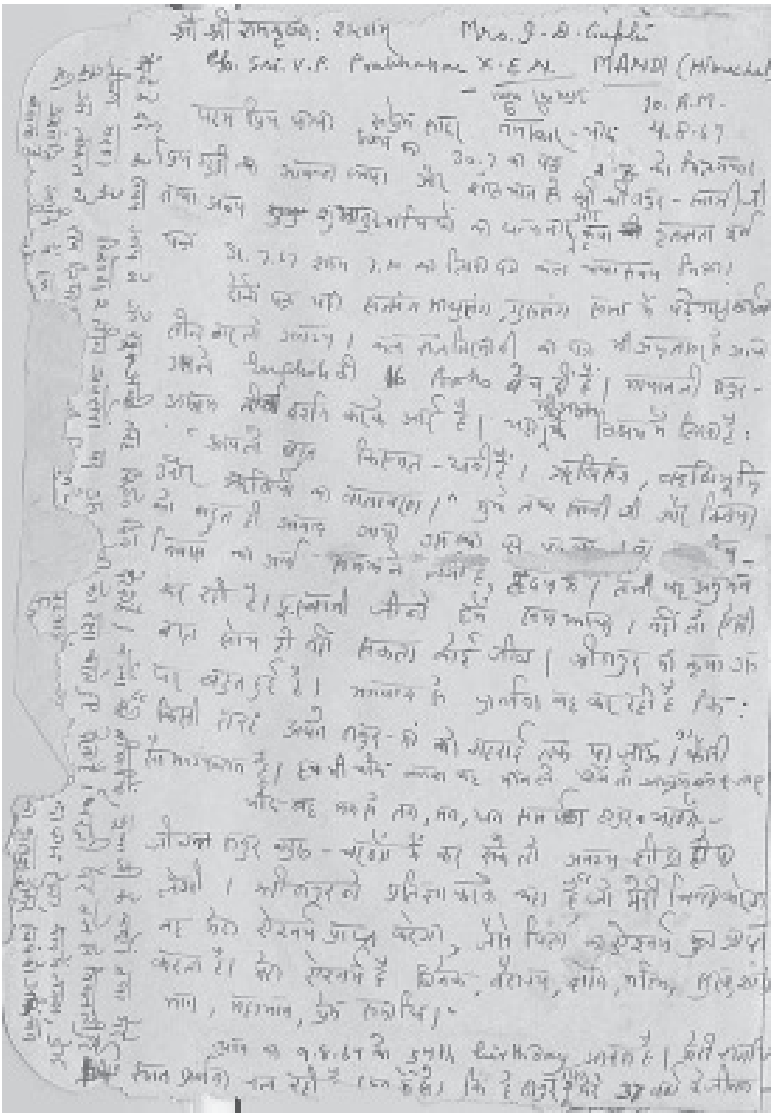

''आप तो बहुत किस्मत-धनी हैं। ऋषिसंग, ऋषिभूमि और ऋषियों का वातावरण।''

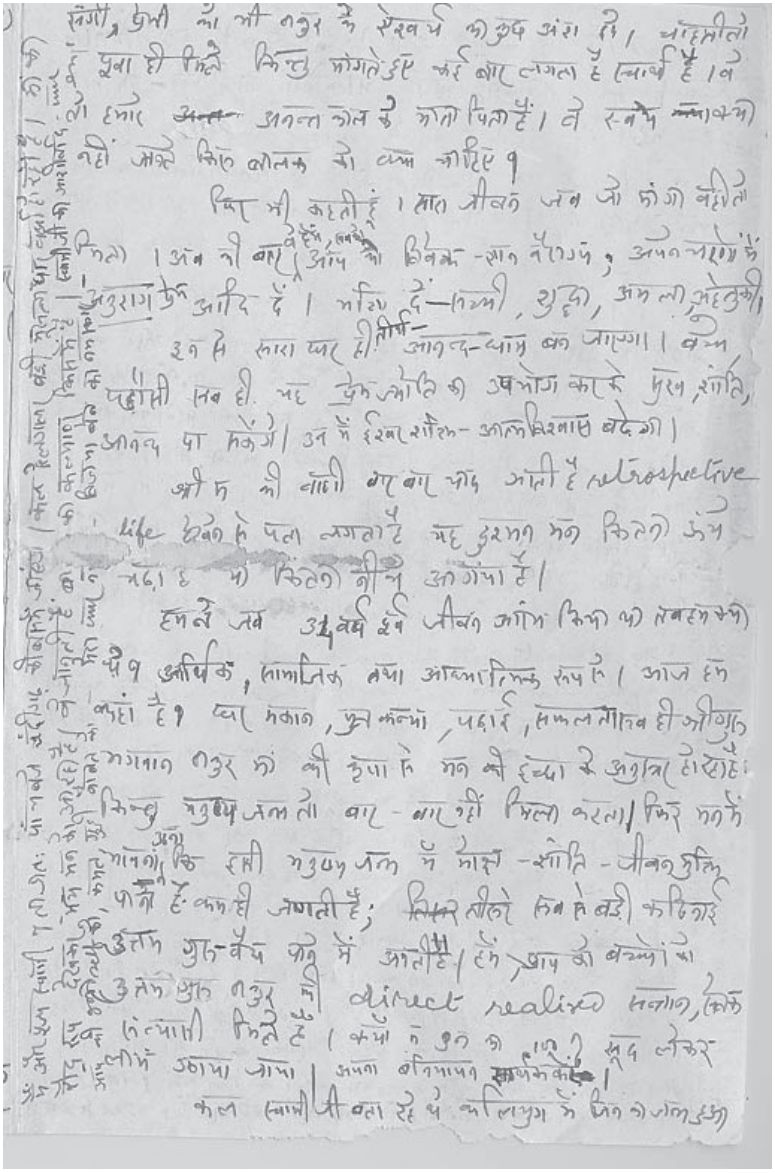

मुझे तथा स्वामीजी और विजया को बहुत ही आनन्द आया उसका पत्र पढ़कर। वह स्वतंत्र निवास का अर्थ समझने लगी है, हृदय में। तभी यह अनुभव कर रही है। पूज्य स्वामीजी ने हमें समझाया। नहीं तो ऐसी बात

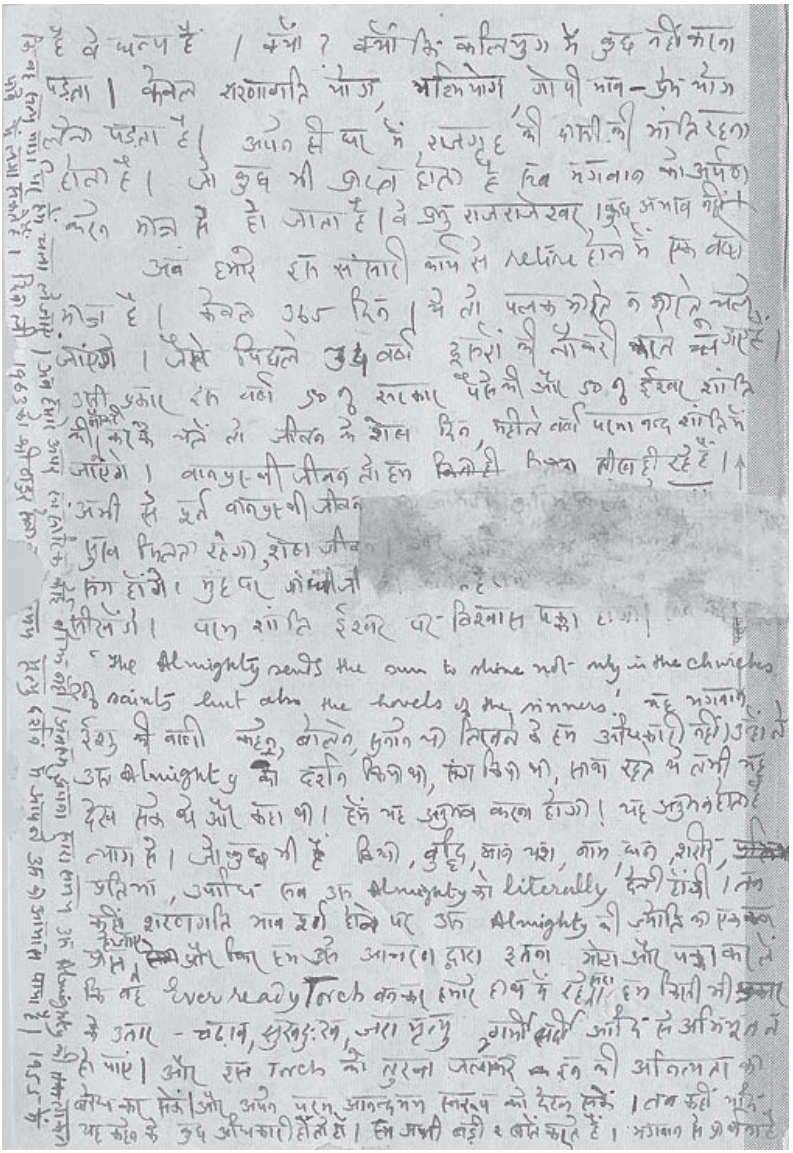

सोच ही नहीं सकता कोई जीव। श्री ठाकुर-माँ की कृपा उस पर बहुत हुई है। भगवान से प्रार्थना कर रही है कि :

''किसी तरह अपने ठाकुर-माँ को गहराई तक पा जाऊँ।''

कैसी सौभाग्यवान है! हम भी यदि काश यह भाव ले पावें तो (घर) आश्रम बन जाए।

यदि वह मन से तन, मन, धन ठाकुर-चरणों (में) — जीवन्त ठाकुर गुरु-चरणों में समर्पण कर सके तो (वह) अवश्य शीघ्र ही पा लेगी। श्री ठाकुर ने प्रतिज्ञा करके कहा है, ''जो मेरी चिन्ता करेगा वह मेरा ऐश्वर्य प्राप्त करेगा, जैसे पिता का ऐश्वर्य पुत्र प्राप्त करता है। मेरा ऐश्वर्य है — विवेक, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, सुख, शान्ति, भाव, महाभाव, प्रेम, समाधि।''

आपका 9-8-67 को 57th birthday आ रहा है। मेरी सतत प्रार्थना चल रही है (मन में से) कि हे ठाकुर गुरु! मेरे 37 वर्ष के जीवन-संगी, प्रेमी को भी ठाकुर के ऐश्वर्य का कुछ अंश दो। चाहती तो हूँ पूरा ही मिले किन्तु माँगते हुए कई बार लगता है, स्वार्थ है। वे तो हमारे अनन्त काल के माता-पिता हैं। वे क्या स्वयं नहीं जानते किस बालक को क्या चाहिए।

फिर भी कहती हूँ, सारा जीवन जब जो माँगा वही तो मिला। अब की बार वे हमें, सबको, आपको विवेक, ज्ञान, वैराग्य, अपने चरणों में अनुराग-प्रेम आदि दें। भक्ति दें — सच्ची, शुद्धा, अमला, अहेतुकी। इनसे सारा घर ही तीर्थ, आनन्द-धाम बन जाएगा। बच्चे, पड़ोसी सब ही यह प्रेम ज्योति-उपभोग करके सुख, शान्ति, आनन्द पा सकेंगे। उनमें ईश्वर-शक्ति, आत्मविश्वास बढ़ेगा।

श्री म की वाणी बार-बार याद आती है — retrospective life (बीता जीवन) देखने से पता लगता है यह दुश्मन मन कितना ऊँचे चढ़ा है या कितना नीचे आ गया है।

हमने जब 34 वर्ष पूर्व जीवन आरम्भ किया था तब हम क्या थे, आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक रूप से? आज हम कहाँ हैं? घर-मकान, पुत्र-कन्या, पढ़ाई, सफलता — सब ही श्री गुरु भगवान ठाकुर माँ की

कृपा से मन की इच्छा के अनुसार हो रहा है।

किन्तु मनुष्य-जन्म तो बार-बार नहीं मिला करता। फिर मन में (यह) भावना उठना कि इसी मनुष्य-जन्म में मोक्ष, शान्ति, जीवन-मुक्ति पाना है — कम ही जगती है।

तीसरे सबसे बड़ी कठिनाई उत्तम गुरु-वैद्य पाने में आती है। हमें, आपको, बच्चों को उत्तम गुरु, ठाकुर की direct realised सन्तान, सेवक संन्यासी मिले हैं। क्यों न उनका 100% सूद लेकर लाभ उठाया जाय! अपना बनियापन सार्थक करें!

कल स्वामीजी बता रहे थे कलियुग में जिनका जन्म हुआ है, वे धन्य हैं। क्यों? क्योंकि कलियुग में कुछ नहीं करना पड़ता। केवल शरणागति-योग, भक्ति-योग, गोपी-भाव — प्रेमयोग लेना पड़ता है। अपने ही घर में राजगृह (बड़े घर) की दासी की भाँति रहना होता है। जो कुछ भी प्राप्त होता है, भगवान को अर्पण करने मात्र से हो जाता है। वे प्रभु राजराजेश्वर! कुछ अभाव नहीं।

अब हमारे इस संसारी कार्य से retire होने में एक वर्ष है। केवल 365 दिन। ये तो पलक झपकते, न झपकते चले जाएँगे। पिछले 34 वर्ष दूसरों की नौकरी करते चले गए हैं। उसी प्रकार इस वर्ष 50% सरकारी पैसे की और 50% ईश्वर-शान्ति की नौकरी करके चलें तो जीवन के शेष दिन, महीने, वर्ष परमानन्द, शान्ति में जाएँगे। वानप्रस्थी जीवन तो हम बिताना सीख ही रहे हैं। अभी से पूर्ण वानप्रस्थी जीवन का अभ्यास आरम्भ कर दें तो परम सुख मिलता रहेगा, शेष जीवन। ...ईश्वर पर विश्वास पक्का होगा।

''The Almighty sends the Sun to shine not only in the churches of saints but also the hovels of the sinners,'' यह भगवान ईशु की वाणी कहने, बोलने, सुनाने या लिखने के हम अधिकारी नहीं। उन्होंने उस Almighty का दर्शन किया था, संग किया था — साथ रहते थे। तभी यह देख सके थे और कहा था। हमें यह अनुभव करना होगा। यह अनुभव होता है त्याग से। जो कुछ भी हैं विद्या, बुद्धि, मान-

यश, नाम, धन, शरीर, प्रतिभा, उपाधि सब उस Almighty को literally देनी होंगी। तब कहीं शरणागति भावपूर्ण होने पर उस Almighty की ज्योति का एक कण प्राप्त हो जाए और फिर हम उसे आचरण द्वारा इतना मोटा और पक्का कर लें कि वह Everready Torch बन कर हमारे हाथ में रहे सदा। हम किसी भी प्रकार के उतार-चढ़ाव, सुख-दु:ख, जरा-मृत्यु, गमी-सर्दी आदि से अभिभूत न हो पाएँ। और इस Torch को तुरन्त जला कर इनकी अनित्यता का बोध कर सकें और अपने परम आनन्दमय स्वरूप को देख सकें। तब कहीं यह कहने के कुछ अधिकारी हों तो हों। हम अभी बड़ी-बड़ी बातें ही करते हैं।

भगवान से प्रार्थना है कि वे हमें सत्य-मार्ग पर चला ले जाएँ। अब हमारे ऊपर सांसारिक कोई बोझ नहीं। अब हम अपना सारा समय उस Almighty की ताकत पाने में लगा सकते हैं।

— 1955 में कन्धे के दर्द के समय आपने उसे खूब अच्छी तरह कितने दिन देखा है।

— दीवाली, 1963 को श्री ठाकुर-सेवा के समय मृत्यु-दर्शन में आपने उसका आभास पाया है।

बच्चों की बीमारियों, फूफा जी के कष्टों तथा मेरे जीवन-मरण के विशेष-विशेष तीन अवसरों पर उस Almighty को रक्षा करते हुए देखा है। ...हमें उस परमात्मा का कृतज्ञ होकर स्वयं को अकिञ्चन बनाना है।...

कल से बड़ी मूसलाधार वर्षा हो रही है। माँ का रौद्र रूप देखकर भय मन को आ रहा है। वे जानती हैं बालक का कल्याण किसमें है।

स्वामीजी का आशीर्वाद-प्यार! आपकी goodself को, कमल-गुड्डी-नौबत को मेरा प्यार, नमस्कार। विजया बेन का नमस्कार।

आपकी — मन्नो।

— नूपुर-2011, पृष्ठ 69-76

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो मिलाय॥

— संत कबीर

19

माँ! तुम्हें शत-शत प्रणाम

— डॉ० निर्मल मित्तल

अनेक समय से मन में जिज्ञासा लिये श्रीमती निर्मल मित्तल को सुयोग से श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता के रूप में मिल गया ऐसा जन जिसने अपने निज के उदाहरण से समझा दिया, बता दिया कि गृहस्थ में रहते हुए भी किस प्रकार ईश्वर में मन दिया जा सकता है। इन्हीं दीदी जी, श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से जो कुछ पाया, जो कुछ सीखा, उसमे से कुछ बातें यहाँ प्रस्तुत हैं।

— सं०

अपनी बात कहूँ तो सन् 1989 में पति-प्रेरणा से 'वर्णाश्रम सम्बन्धी मूल्यों के सन्दर्भ में रामचरितमानस का अध्ययन' विषय पर शोध-कार्य किया था। शोध कार्य तो कर लिया पर मनस्तोष नहीं हुआ। मन में होता वर्णाश्रम-धर्म का यथावत् व्यावहारिक रूप क्या कहीं देखने को मिल सकता है? यहाँ-वहाँ आश्रमों में जाना आरम्भ कर दिया इस आशा से कि शायद वहीं कहीं इसका जीवन्त रूप देखने को मिल जाए। पर कहाँ?

भला हो हमारी सम्पर्कीया बहन शकुन्तला जी (कुन्ता बहन जी) एवं भाई ईश्वरचन्द्र जी का जिन्होंने मेरी जिज्ञासा को समझते हुए मुझे यहाँ-वहाँ भटकने से बचा लिया और मुझे श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के पास भेज दिया। ये दोनों भाई-बहन सन् 1978 से ही इन श्रीमती गुप्ता के सम्पर्क में थे। इनके माध्यम से थोड़ा-बहुत परिचय तो मेरा तभी से था ही।

अब सन् 1995 की बात। कॉलिज में वार्षिक परीक्षा के बाद मई-जून की छुट्टियाँ चल रही थीं। घर का काम-काज निपटा मैं पहुँच जाती श्रीमती गुप्ता के पास। कुन्ता बहन जी की देखादेखी मैं भी इन्हें 'दीदी' कहने लगी। कुछ दिन बाद ये मुझसे बोलीं — मैं तुमसे बहुत बड़ी हूँ, तो तुम मुझे दीदी नहीं, 'दीदी जी' कहो। दीदी जी ने पहले 1-2 दिनों में तो मुझसे मेरे, मेरे परिवार के बारे में कुछ बातें पूछीं। फिर पूछा — कौन-कौन से ग्रन्थ पढ़े हैं? तुम्हारे मन में क्या-क्या सवाल चलते हैं आदि-आदि।

और दो दिन बाद ही दीदी जी ने मेरे हाथ में 'कथामृत' भाग-I थमा दिया। कहा, ''इसे पढ़ो, पढ़कर सुनाओ।'' कभी-कभी 'श्री म दर्शन' में से भी पाठ करने को कहतीं। बीच-बीच में मुझसे प्रश्न करतीं। पूछतीं, ''बताओ, क्या समझा?'' मेरे उत्तरों से कभी वे सन्तुष्ट होतीं तो कभी कहतीं, ''ना'' और फिर सही अर्थ, सही उत्तर क्या है, समझा देतीं।

एक दिन की बात है। दीदी जी मुझे 'गुरु की अनिवार्यता' के बारे में कुछ बता रही थीं, समझा रही थीं। वे बोलीं, ''देखो, श्री म को गुरु रूप में मिले ठाकुर, आगे स्वामी नित्यात्मानन्द को मिले श्री म 'कर्णधार' — गुरु रूप में, मुझे मिले स्वामी नित्यात्मानन्द। और सभी का हो गया था जबरदस्त रूपान्तरण अपना-अपना गुरु मिलने के बाद।''

उनकी बात सुनकर एकदम मन में आया — कहीं ये इस ओर इंगित तो नहीं कर रहीं कि ये ही मेरी गुरु हैं। फिर सोचने लगी — सब कुछ तो इनसे पा रही हूँ, सभी तो समाधान मिल रहे हैं, नित्यप्रति की समस्याओं के भी। इनसे मिलने को, इनकी बातें सुनने को, मानने को मन भी होता है। फिर इनसे बेहतर गुरु कौन?

और मैंने मन ही मन इन्हें अपना गुरु मान लिया। मुझे हो गया गुरुजन्य-लाभ, पर कहती रही इन्हें 'दीदी जी' ही।

गुरु-धारण तो हो गया। पर गुरु की बात मानूँ तब ना! ठाकुर की वाणी है, ''ईश्वर-दर्शन ही मनुष्य-जीवन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है।'' इधर ट्रस्ट-चिह्न में भी है — आगे ईश्वर, परे सब। दीदी जी के जीवन में इसका शत-प्रतिशत

पालन देख भी रही हूँ। गृहस्थ में रहते हुए भी इनका मन रहता है चौबीसों घण्टे ट्रस्ट में, ट्रस्ट-काज में, गुरु-काज में, ईश्वर में।

मन में प्रश्न उठता, ''मेरा क्यों नहीं हो रहा?'' फिर सोचती, ''वर्णाश्रम धर्म पर शोधकार्य किया है। मेरा वानप्रस्थ आश्रम चल रहा है, यह भी जानती हूँ। इस आश्रम के क्या कर्त्तव्य हैं, खूब समझती हूँ। दीदी जी के जीवन में इसका व्यावहारिक रूप भी स्पष्ट देख रही हूँ। इनका संग-लाभ भी ईश्वर-कृपा से मुझे मिल रहा है। फिर मेरा क्यों नहीं हो रहा?''

इधर दीदी जी को देखती हूँ — घरेलू औरत, कोई नौकरी नहीं, अपनी कोई आय नहीं, बीमारी से लाचार देह, फिर भी श्री म ट्रस्ट का इतना बड़ा कार्य! श्री म दर्शन — 16 भागों, कथामृत पाँच भागों का बंगला से हिन्दी में अनुवाद, इन पुस्तकों का प्रकाशन-कार्य, गुरु-सेवा, गुरु का शरीर शान्त हो जाने के बाद ट्रस्ट-मन्दिर - श्री पीठ का कार्य — सब सम्भाला। और फिर गुरु को रखा अपने ही घर में। कैसा जोर था भीतर! क्या-क्या दिक्कतें नहीं आई होंगी इन्हें? पर गुरु में, ईश्वर में ऐसा प्रबल विश्वास और दृढ़ निश्चय कि पति ने भी इस ईश्वरीय कार्य में इनका साथ दिया आजीवन। धन्य हैं आप!

और इधर मैं! कामकाजी महिला, अपनी नौकरी है, अपना पैसा भी है, देह भी ठीक है। तो भी मेरा क्यों नहीं हो रहा?

कारण तो स्पष्ट ही है — जन्म-जन्म के अपने संस्कार! फिर अनेक भय। मन की दुर्बलता। परिवार-समाज, सबका सामना कौन करे? भीतर जोर भी तो नहीं कि दोनों ओर कुशलता से निभा सकूँ — संसार भी खुश रहे और मन का काम भी कर सकूँ।

एक बात और। अपने गुरु को मिलने के बाद दीदी जी का हो गया था — आगे ईश्वर, परे सब। पर मेरा वह अभी तक नहीं हुआ है।

ऐसे ही विचारों से एक दिन मन बहुत परेशान था। पहुँच गई दीदी जी के पास। बहुत धैर्य बँधाया उन्होंने और बोलीं, ''देखो, गृहस्थी के लिए यह

कार्य इतना सरल नहीं। फिर औरत की जात। औरत के लिए यह सब ऐसे है जैसे नदी की विपरीत धारा में चलना। मन में थोड़ा जोर लाओ। प्रार्थना करो हर समय। ठाकुर असम्भव को भी सम्भव कर देंगे।''

फिर बोलीं, ''देखो, कुछ भी हो, नूपुर, कथामृत, श्री म दर्शन का काम मत छोड़ना।''

ट्रस्ट की वार्षिक पत्रिका 'नूपुर' का कार्य दीदीजी ने मुझे 1996 में ही सौंप दिया था। वह कार्य तथा कथामृत, श्री म दर्शन — हिन्दी का बंगला से मिलान के पश्चात् उनके रिप्रिंट का कार्य मैं और ईश्वर भाई साहब मिलकर कर रहे थे। सन् 1998 में कथामृत प्रथम भाग का यह कार्य दीदी जी ने अपने मार्ग-दर्शन में हमसे सम्पन्न करवा भी लिया था। हमारे काम से सन्तुष्ट होकर उन्होंने आगे भी रिप्रिंट का कार्य हमें सौंप दिया। यह कार्य मैं थोड़ा-बहुत करती भी रहती कैसे भी समय निकालकर। अब पिछले लगभग तीन वर्षों से नौबत भैया भी इस कार्य में पुन: जुड़ गए हैं।

कथामृत-श्री म दर्शन के इस रिप्रिंट-कार्य के बहाने ठाकुर की, गृही संन्यासी श्री म की वाणी पढ़ती तो मन तनिक खड़ा रहता। तो भी चाहत के अनुसार कार्य न कर सकने के कारण असन्तोष बना ही रहता और दीदी जी से मिलने को मन व्याकुल रहता।

एक बार घर-परिवार के चक्करों में ऐसी फँसी कि लगातार कुछ दिन दीदी जी के पास न जा सकी। कई दिन बाद गई तो देखा उनका शरीर ठीक नहीं है। उनके समीप बैठी। तनिक उदास स्वर में वे बोलीं, ''दरअसल शुद्ध सत्त्व भक्त-शिष्य मेरे भाग्य में है ही नहीं।''

उनकी यह बात मुझे भीतर तक कचोट गई। सोचा — ठीक ही तो कहती हैं ये। जैसे और जितना काम होना चाहिए, वह हो भी तो नहीं रहा मुझसे। अवश्य ही यह बात उन्होंने मुझे लक्ष्य करके ही कही थी इसलिए कि शायद अब तो मैं श्री म दर्शन, नूपुर आदि कार्यों में, ठाकुर-काज में और अधिक समय दूँ।

दीदी जी से 1995 में मिली थी। बीस बरस बीत गए। थोड़ा-बहुत

कार्य चल रहा है पर असल में तो आज भी स्थिति है जस की तस। सोचती हूँ, उपाय क्या है? एक ही उपाय सूझ रहा है — प्रार्थना, केवल प्रार्थना।

दीदी जी, आप कहा करतीं — मरने के बाद मैं श्री पीठ में जाकर बैठ जाऊँगी। मेरी लाठी देख रहे हो ना! जिससे जो करवाना है, सब करवा लूँगी।

आपकी इच्छा से, ठाकुर-कृपा से अब श्री पीठ-मन्दिर का विस्तारण भी हो गया है। तत्पश्चात् सेवक-भक्तों द्वारा सन्ध्या-आरती, पूजा-पाठ भी आरम्भ हो गया है। आप चाहती थीं भक्तजन कभी-कभी यहाँ साधना हेतु निर्जन-वास करें। वह भी आरम्भ हो गया है।

दीदी जी, सन् 1995 में आपसे मिली तो पहले आप थीं मेरी दीदी जी, सन् 1998 में आप हो गई थीं मेरी गुरु और अब आप हो गई हैं मेरी 'गुरु माँ'!

माँ! अपनी इस बच्ची से जो भी आपको आशा थी, आशा है, उसे आप स्वयं ही पूरा करवा लें हृदय में प्रेरणा देकर।

और अन्त में यही उद्‌गार : माँ! तुम्हें शत-शत प्रणाम।

और अब मेरे डायरी-पन्नों से

कथामृत और श्री म दर्शन की बातों को और स्पष्ट करते समय दीदी जी मुझे अनेक उदाहरण देतीं। अपने, अपने परिवार, अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द की बातें भी बतातीं। कुछ समय बाद मुझे हुआ कि इनकी बातें तो मन में खूब लगाती हैं, इन्हें तो नोट करके रख लेना चाहिए। ये सभी बातें मैं वहीं उनके पास, उनके श्री चरणों में बैठे-बैठे ही नोट करने लगी सूत्र रूप में। फिर घर आकर इन्हें fair करती, उस दिन की तिथि-वार भी नोट करती।

मुझे नोट्स लेते देख 2-3 दिन में ही उन्होंने पूछा था, ''घर जाकर इन्हें पक्का लिखती हो क्या?''

''हाँ जी।''

''मगर क्यों?''

''ताकि पीछे इन्हें पढ़कर शान्ति पा सकूँ, मार्गदर्शन पा सकूँ।''

फिर तो कभी-कभी कहतीं, ''ज़रा देखूँ तो क्या लिखा है? कल जाकर क्या लिखा?'' पिछला लिखा मैं सब अपने पास रखती। मेरा लिखा सुनकर वे प्रसन्न होतीं और अनेक स्थानों पर संशोधन भी करवा देतीं।

मुझ द्वारा लिखी, नोट की गई ये बातें हैं दीदी जी द्वारा निज मुख से कही बातें। उनकी ये बातें आज भी मेरे लिए प्रेरणा स्रोत हैं, मार्ग-दर्शक हैं। इन सभी बातों में जीवन्त जीवन-दर्शन है। इनमें से ही कुछ बातें यहाँ भी :

रोगाक्रान्ता दीदी जी

दीदीजी, श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता, प्राय: अस्वस्थ ही रहतीं। मैं उन्हें 6-7 गोलियाँ एक साथ उदरस्थ करते देखती तो सोचती — हे भगवान! इतनी दवाइयाँ एक साथ! एक दिन पूछ ही लिया दीदी जी से उनके रोगों का इतिहास।

31 जनवरी, 1998 को दीदी जी के पास गई दोपहर दो बजे। उनसे कहा — आप इतनी बीमार रही हैं, कुछ बताएँगी? अपनी बीमारी के बारे में उन्होंने जो कुछ बताया, जैसे-जैसे बताया, तदनुसार :

1948 में पाकिस्तान बनने के बाद पापा जी (गुप्ता जी) जब प्रोफैसर होकर लुधियाना आए तो दीदी जी को वहाँ का पानी suit नहीं किया। उन्हें दस्त लग गए। दस्त बढ़ते गए। धीरे-धीरे खून आने लगा। पेचिश हो गई। उनका इलाज़ शुरु किया गया। फिर पापा जी सन् 1956 में प्रिंसिपल होकर टाण्डा-उड़मुड़ आ गए। वहाँ भी यह तकलीफ़ रही। पेट खराब ही रहा।

जनवरी, 1960 में पेट इतना ज्यादा खराब हो गया और हालत इतनी ज्यादा खराब हो गई कि उन्हें अमृतसर के अस्पताल में ले जाना पड़ा। यहाँ पर उस समय डॉ० चुटानी थे। उन्होंने दीदी जी का इलाज़ किया। बीमारी का नाम — अल्सरेटिव कोलाइटस। दो महीने रहना पड़ा अस्पताल में ही।

फिर ठीक होकर आ गईं टाण्डा-उड़मुड़। मई, 1960 में दोबारा अटैक हुआ। फिर उनकी बड़ी लड़की प्रेम, जो डॉक्टर हैं, उन्हें अपने साथ देहली ले गईं। वहाँ इलाज़ चलता रहा; 3-4 महीने बाद कुछ आराम हुआ। बीच-बीच में फिर हालत खराब होती रही। दिल्ली में रहते हुए जिस हस्पताल में भी डॉ. चुटानी आते, उसी में जाती इलाज़ के लिए।

फिर सन् 1982 में intestinal hemorrage हो गया। बड़ा ऑप्रेशन हुआ। रैक्टम् (टट्टी का रास्ता) बन्द करना पड़ा। ऑप्ररेशन करके पेट के दाईं ओर स्टोमा बनाया गया, उसके ऊपर थैली बाँधी/लगाई गई जिसमें मल एकत्रित होता और उसी को उतार कर सफाई करके फिर नई थैली लगाई जाती। सन् 1982 के बाद से जीवन इसी तरह चल रहा है। ऑप्रेशन के बाद पेट पर जो स्टोमा बना, वह शिवलिंग आकार का हो गया, उसे साफ करते समय, उस पर मल्हम पट्टी, थैली आदि लगाते समय दीदी जी शिव-भाव में ही उसकी पूजा करतीं।

महाराज जी का शरीर तो 1975 में चला गया, उसके बाद दीदी जी अपने इसी रोगी शरीर से ही ट्रस्ट के, ठाकुर के कार्य में लगी हैं और आज तक लगी हैं। इसे वे शिव का प्रसाद ही मानती हैं। स्टोमा पर लगी पट्टी की सफाई में कई बार घण्टों लग जाते हैं और कई बार तो उन्हें दिन में तीन-तीन, चार-चार बार पट्टी बदलनी पड़ती है, पर वे घबराती नहीं, धैर्यपूर्वक समस्त कार्य करती रहती हैं। अनेक बार जब खुद इसे सम्भाल नहीं पातीं, तो उनकी भक्त-सेविका श्रीमती निर्मला कालिया इस कार्य में उनकी सहायता करती हैं। वृद्धावस्था के कारण अब यह कार्य अति कठिन लगता है, तो भी ठाकुर-कृपा से वे आनन्द में हैं।

आजकल जिनका यह ऑप्रेशन होता है, उनका ठीक हो जाने पर रैक्टम् शायद फिर से ठीक हो सकता है। मगर जिनका पुराना ऑप्रेशन हुआ है, उनका नहीं हो सकता।

दिसम्बर, 1957 में दीदी जी के गले में sceptic हो गया। उस समय उनकी आयु 42 वर्ष। इस आयु में डॉक्टर गले का ऑप्रेशन आसानी से करते

नहीं। पर एक डॉक्टर बोले, ''आपका तो बालक का स्वभाव है।'' फिर वह डॉक्टर जानकार भी थे, तो उन्होंने ऑप्रेशन कर दिया।

सन् 1982 के बाद दीदी जी को हार्ट अटैक हुआ। फिर उसकी दवाई आरम्भ की गई। डॉक्टरों ने कहा, सारे दाँत निकलवाने पड़ेंगे। अब उनके दाँत निकालने को कोई तैयार नहीं। फिर यहाँ पी.जी.आई. में डॉ. तिवारी, जो dental deptt.की head हैं, वे दीदी जी की लड़की प्रोफैसर ऊर्मि की सहेली हैं। उन्होंने स्वयं दीदी जी के सारे दाँत निकाले।

पेट की तकलीफ के कारण 1960 में जब उन्हें अस्पताल जाना पड़ा था, तभी से डॉक्टरी सलाह के अनुसार वे खिचड़ी ही खा रही हैं — मलका मसर की दाल और चावल की। मिर्च, मसाले एकदम बन्द। और मजाल क्या कि उनका कुछ भी ऐसी चीज़ खाने को जी ललचा जाए जो डॉक्टर ने मना कर दी। इतना ज़बरदस्त कन्ट्रोल अपने ऊपर। 38 वर्ष से, खिचड़ी पर ही हैं।

इस समय उनकी अनेक दवाइयाँ चल रही हैं — हार्ट अटैक की, ब्लड प्रैशर की, पेट की, और फिर अनेक बार सांस आने में दिक्कत होती है, उसकी; उनके गॉल ब्लैडर में स्टोन है, उसकी वजह से जबरदस्त पीड़ा होती है, ऐसी हालत में ऑप्रेशन हो नहीं सकता, दर्द जैसे ही महसूस हो, तुरन्त उसके लिए दवाई खानी पड़ती है। तो इतनी सारी दवाइयाँ एक साथ चल रही हैं। तो भी हँसती रहती हैं, कहती हैं, ''देखो ना, ठाकुर-कृपा से मुझे कितनी दवाइयाँ मिल रही हैं।''

स्टोमा पर लगाने वाली सभी दवाइयाँ उनकी गुरु बहन पद्मा जी की बेटी सुनीता मेहरा उन्हें अमेरिका से भेजती हैं, और भेज रही हैं सन् 1982 से ही। ये दवाइयाँ बहुत कीमती हैं, पर वे सेवा-भाव से भेज रही हैं। उन्होंने बताया — एक बार अमेरिका में जिस दुकान से वे दवाइयाँ खरीदती हैं, वहाँ के कैमिस्ट ने कहा था, ''वह patient बड़ा भाग्यशाली है जिसके लिए ये दवाइयाँ जाती हैं।'' दवाइयाँ महँगी होने की वजह से ही उसने ऐसा कहा था। सुनीता मेहरा एकदम बोलीं, ''नहीं, भाग्यशाली तो मैं हूँ कि वे (दीदी जी) मेरी इस सेवा को accept कर रही हैं।''

बचपन से ही कठोर परिश्रम का अभ्यास

10-08-1995, वीरवार, रक्षाबन्धन

प्रसंग: 'श्री म दर्शन' में स्वामी नित्यात्मानन्द लिखते हैं, ''श्री म के साथ रहते हुए कठोर परिश्रम करना पड़ता था। सोने के लिए प्राय: चार घण्टे से अधिक का समय नहीं मिल पाता था।''

दीदी जी कहने लगीं, ''मैं इतना काम करती थी। कई बार तो स्वामी जी से मिलने 10-12 अतिथि आ जाते। उन्हें देखना, फिर अनुवाद कार्य, ऊपर से शरीर अस्वस्थ। सोने में देरी हो जाती और महाराज जी सुबह दो बजे उठा देते साधना के लिए। और जब मुझसे साधना न हो पाती तो कहते — सो जा, सो जा। तेरी साधना, तेरा जप मैं करूँगा।

''परिश्रम का अभ्यास मुझे बचपन से ही था। आठवीं कक्षा में मैं अपने स्कूल में first थी। 2nd student में और मुझमें था 84 marks का अन्तर। Maths में एक नम्बर भी कम हो जाता तो रोती। आठवीं के बाद लगभग 1-2 महीने में ही 'रत्न' के पेपर होने थे। रात-दिन लगकर तैयारी की और पेपर दे दिए। उन दिनों कोई notes और guides तो मिलती न थीं।

''इतनी बड़ी महाभारत खुद पढ़ी। तब मेरी बहन, मुझसे डेढ़ साल बड़ी, (नाम से 'धन्नो') अन्धी हो गई थी। उसका भी काम मुझे देखना होता था। रामायण (तुलसी की), महाभारत पढ़कर उसे सुनाया करती। मेरी छोटी बहन लगभग छ: साल की थी, जब उसे रामचरितमानस पढ़कर सुनाने लगी।

''स्पर्धा मुझमें इतनी कि अपने से आगे किसी को निकलने नहीं देती थी। हमारे पड़ोस में दो लड़कियाँ कढ़ाई के काम में बहुत मेहनत करती थीं। बहुत सुन्दर कढ़ाई के नमूने लाई थीं कहीं से। मैंने माँगे तो उन्होंने इन्कार कर दिया देने से। फिर दिमाग लड़ाया कहाँ से लाई होंगी ये इन नमूनों को। खोजती-खोजती पहुँच गई सही स्थान पर। वहाँ से मैं भी कढ़ाई के नमूने लाने लगी और रात-रात भर जाग कर कढ़ाई करती और उन दोनों लड़कियों

के बराबर अकेली ही काम कर डालती।

''फिर शादी के बाद जब प्रेम और वीणा, ये दो लड़कियाँ हो गई थीं, तब पापा बहुत बीमार हो गए। उस समय मन में आया मुझे अपने पैरों पर खुद खड़े होना है। स्वयं ही पढ़ना शुरु कर दिया। घर का काम, पापा की सेवा, दोनों बच्चों को सम्भालना और इसके बाद रात को जाग कर पढ़ा करती। रात में बस 3-4 घण्टे सोती। काम को कभी भी ज्यादा नहीं समझा।''

गरीब, शोषित जनों के प्रति करुणा, समाज-सेवा का भाव

22-3-1996, शुक्रवार

दीदी जी आरम्भ से ही थीं दृढ़ निश्चयी, धुन की पक्की, अति प्रैक्टिकल। आरम्भ से ही मन में समाज-सेवा का भाव। गरीब, शोषित जनों की मदद के लिए सदैव आतुर। समाज-सेवा में actively participate करती थीं। काम से कभी घबराती न थीं। दिन में सोने की कभी लालसा नहीं। नींद की उन्हें परवाह नहीं।

सन् 1941-42 की बात। दीदी जी उन दिनों थी लाहौर में। Govt. College के प्रिंसीपल की पत्नी थी श्रीमती सोंधी। वे जाया करतीं अस्पतालों में असहाय, बेसहारा मरीज़ों की सहायता के लिए। दीदी जी भी जाने लगीं। उन मरीज़ों के लिए चिट्ठी लिखतीं, कोई और काम करना होता वह करतीं, उनकी difficulty सुनतीं, उनकी समस्याओं का यथासम्भव समाधान करतीं। उन मरीज़ों को दवाइयाँ, फल आदि पहुँचातीं। पैसे मोहल्ले से इकट्ठे कर लेतीं। एक बार तो वे तीन-तीन अस्पतालों में जातीं।

लाहौर में था डॉ० जमीयत सिंह अस्पताल, निकल्सन रोड पर। यहाँ दीदी जी जाया करतीं। एक बार वहाँ एक अविवाहिता माँ delivery के लिए बम्बई से आई थी। उसने एक बहुत सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। बच्चा छः दिन का था और माँ के पास कुछ भी न था बच्चे को पहनाने के लिए। उसने

अपनी बहुत बढ़िया गर्म शाल को एक ओर से काटा और अपने बेटे के लिए झबला सीने लगी। उन्हें उस माँ को देख कर दया आई। दीदी घर आईं। उनकी छोटी बेटी ऊर्मि तब लगभग डेढ़ वर्ष की थीं। घर आकर दीदी जी ने अपनी बच्ची के 4-5 झबले उठाए और अस्पताल में जाकर उस कुँआरी माँ को दिये। डॉ. खेड़ा ने वहाँ लाहौर में 'मातृ मन्दिर' बना रखा था। वह लड़की अपने बच्चे को यहाँ छोड़ना चाहती थी। जब वह अपने बच्चे को यहाँ छोड़ने आई तो दीदीजी ने उसका पीछा किया और इस case को वे तब तक follow करती रहीं जब तक उन्होंने यह न देख लिया कि बच्चा किसी बहुत बड़े घर वालों ने गोद ले लिया है।

इसी डॉ० जमीयत सिंह अस्पताल में दीदी जी देखतीं कि delivery के समय औरतें सारी-सारी रात बिना कपड़े के पड़ी रहती हैं। सर्दी का मौसम। दीदी ने मोहल्ले वालों से काफी ऊन इकट्ठी की, मोहल्ले की स्त्रियों की सहायता से उन बेसहारा औरतों के लिए leggings तैयार कीं और उन्हें दीं।

सन् 1948 में दीदी जी लुधियाना में थीं। यहाँ दीदी जी ने अपने घर में ही downtrodden बच्चों का स्कूल खोल लिया। बच्चों को घर पर बुलातीं, उन्हें पढ़ातीं। आस-पास के लोग परेशान। कहने लगे — न आप सोती है, न हमें सोने देती है। दोपहर के खाली समय में जो बुलातीं उन्हें पढ़ाने के लिए। फिर मोहल्ले के लोगों ने अपने बच्चों को मना कर दिया उनके बच्चों से मिलने से। अपने बच्चों से वे कहते — उनके घर न जाना, जुएँ पड़ जाएँगी। गरीब बच्चे जो आते थे दीदीजी के पास पढ़ने। साफ-सुथरे वे होते न थे, सिरों में उनके जुएँ पड़ी रहतीं। दीदीजी कंघी लेकर इनकी जुएँ भी साफ करतीं। धीरे-धीरे उनके पास ऐसे बच्चों की संख्या बढ़ने लगी। घर छोटा पड़ गया।

घर से बाहर दयानन्द मैडिकल कॉलिज में Class IV servants के घर बने हुए थे। उनका आँगन बहुत बड़ा था। उस आँगन में एक बहुत बड़ा वट-वृक्ष था; पर उसके नीचे का स्थान था बहुत गन्दा। दीदी जी ने बच्चों को साथ लगाया और उस स्थान को साफ किया, लिपाई की। फिर वह स्थान

बहुत सुन्दर हो गया। वहाँ बैठ दीदी जी बच्चों को पढ़ाने लगीं।

तो दीदी जी के जीवन की ये बातें क्या बताती हैं ? उनका मन सांसारिकता में नहीं था, उनका मन था सदा अनन्त शक्ति की ओर। पहले तो सद्विचार ही मन में नहीं आते और फिर उन्हें कार्य रूप देने के लिए भीतरी शक्ति चाहिए। गृहस्थ में रहते हुए भी व्यक्ति समाज-सेवा कर सकता है, यदि वह चाहे तो।

लोभ नहीं

31-3-1996, रविवार

दीदी जी ने बताया: सन् 1962 की बात है। महाराज जी अमृतसर में जावा साहब के घर थे। मैं उनके पास गई थी गुड्डी को लेकर। जब आने लगी तो सोचा, महाराज जी के कारण ही मेरी भी सेवा हुई है। मैंने और गुड्डी ने जो खाया, उनका ही खाया है; जिसकी चीज़ खाई उसे ही पैसे दे दूँ। तो चुपचाप महाराज जी के ट्रंक में 100/- रुपये रख दिए और एक स्लिप लिख दी जिस पर अपना नाम I.D. (ईश्वरदेवी) और तिथि लिख दी थी।

महाराज जी बाद में जब मेरे पास आए तो उन्होंने इस बारे में बात की। मैंने कह दिया, ''हाँ महाराज जी, साधु का खाया था न, इसीलिए ऐसा किया। यह जरूरी है महाराज जी। मेरा तो गृही mind है ना। ऐसा न करो तो गृहस्थी का स्वभाव हो जाता है कि साधु के कारण और मिलेगा।'' इसी तरह अपने घर भी करती। महाराज जी के कारण भक्त लोग कुछ न कुछ लाते रहते। मैं यह हिसाब लगाकर कि यह चीज़ कितने की होगी, उतने पैसे चुपचाप महाराज जी के तकिए के नीचे रख देती और महाराज जी को पता भी न लगता। एक बार महाराज जी ने मुझे ऐसा करते देख लिया। बोले, ''यह क्या कर रही हो ? पहले भी ऐसा होता रहा है।'' मैं डर गई, पर कहा - महाराज जी, ये चीज़ें आपके नाम से आती हैं ना। ऐसा न करूँ तो मेरा ध्यान तो हर समय आपके पास आने वाले की डलिया, टोकरी की तरफ ही हो जाएगा, लालची हो जाएगा मेरा मन। महाराज जी खुश हुए थे यह देखकर

कि देखो इसका mind कितना practical है।

दीदी जी ने बताया — देखो, गृहस्थ का धर्म है — साधुसेवा, साधुसंग। जहाँ साधु रहेगा, भक्त जन अनेक वस्तुएँ लाएँगे ही। खाने-पीने की चीज़ें वे जन भी खाएँगे जहाँ साधु रहता है। यहाँ है उस गृही को सावधान रहने की आवश्यकता। मन स्वभावत: लोभी। वह तो देखता रहेगा, बाट जोहता रहेगा — अच्छा है साधु के ठहरने के कारण खाने को मिलता रहता है। पर नहीं, तुम्हारा धर्म तो है साधु-सेवा, साधु के कारण होने वाले लाभ में मन चले जाने से लोभ होगा, साधु-सेवा नहीं। अब आने वाले ने कुछ तो लाना ही है, अब तुम्हारा कर्त्तव्य क्या हो? जिसके कारण से तुमने वस्तु का उपभोग किया, उसी की तो वह वस्तु हो गई, उसके दाम तुम उसी को दे दो। दीदी जी यही करती रहीं।

कितना बड़ा आदर्श! लोभ पर वश पाना क्या सरल?

रोज़मर्रा के जीवन में भी प्रैक्टिकल

19-08-1995, शनिवार

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता, दीदी जी रोज़मर्रा के जीवन में भी कितनी प्रैक्टिकल! कल की बात है। दीदी जी से मिलने तीन साधु आए थे। उस समय रानी* भी दीदी जी के घर आई हुई थी। उन्होंने साधुओं को 101/=, 101/= की प्रणामी दी। रानी के पास पैसे न थे। उन्होंने दीदी जी से 303 रुपए उधार लिए और उन्होंने भी साधुओं को 101/=, 101/= की प्रणामी दी। आज वे दीदी जी को पैसे लौटाने आई थीं। आज मेरे सामने ही रानी ने आकर दीदीजी को पैसे लौटाते हुए कहा : ''ये लो 303 रुपये हैं, कल वाले।'' ''अच्छा-अच्छा'', कहते हुए दीदी जी ने रुपये पकड़े और हमारे सामने ही गिन कर तब रखे।

उनके जाने के बाद बोलीं — किसी को भी पैसे दो या किसी से लो,

* दीदी जी के जेठ, डॉ० भोपाल सिंह जी की पुत्रवधु

उसके सामने ही गिनो। यह सावधानी अवश्य बरतो। पैसे का मामला है ना!

दीदी जी ने बताया: यदि मुझे किसी ऐसी जगह जाना होता जहाँ जाने को मन तो न होता, पर जहाँ जाना जरूरी होता, तो मैं मन में सोचती, ''देख, तुझे अपनी माँ के पास जाना होता तो जाती ना, किसी ऐसे स्थान पर जाना होता जहाँ 10 रुपये (धन) मिलते या यश मिलता तो जाती ना।'' बस ऐसी बातों से मन को समझा कर चल पड़ती। पंजाबी में कहावत है ना, 'मन हरामी ते हुज्जतां ढेर।' जब इन्सान का कोई काम करने का मन न हो तभी वह सैंकड़ों बहाने बनाता है। यह बात दिमाग में आते ही फौरन चल पड़ती।

× × ×

आज दीदी जी ने मुझे और भी एक-दो बातें बताईं :

बोलीं — मैंने पढ़ रखा था: A stich in time saves nine. जुराब फट जाने पर (एक सुराख हो जाने पर) तुरन्त मरम्मत करती और जब तक उसकी मरम्मत ना हो जाए, पहनने न देती। जब कभी पापा फिर भी पहन जाते तो देखती वह छेद बहुत बड़ा हो गया है। तब बड़े छेद की भी मरम्मत करती, पर श्रम अधिक हुआ ना उसमें। छोटा छेद भर दो तो फिर इतना बड़ा होता ही नहीं। हो गया ना — A stich in time saves nine.

× × ×

इसी तरह किसी के बीमार हो जाने पर पूरा परहेज करवाती उससे, डॉक्टर के कहे अनुसार। क्योंकि पढ़ रखा था ना Health is wealth. अपने पिता से झगड़ा हो जाता इसी बात पर। एक बार पिता जी को डॉक्टर ने ज्यादा नमक खाने से मना किया था। मैंने उनकी थाली में पापड़ देख लिया और झट से उठा लिया उसे। कहा — आपको ज्यादा नमक खाना मना है। पापड़ में कितना नमक होता है! माँ बोलीं — अरी, इत्ता सा तो दिया है। मैंने कहा — दवाई भी तो इत्ती सी होती है ना! पिताजी कुछ कहने लगते तो झट कह देती — आपने फिर क्यों सिखाया हमें कि Health is wealth.

ट्रस्ट-चिह्न

नूपुर-97 प्रकाशन के लिए तैयार था। मैंने गुरु माँ श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता जी से कहा — माँ! ट्रस्ट-चिह्न का अर्थ आप कृपया मुझे समझा दें। उन्होंने समझाया और साथ ही लिखवा भी दिया। वे बोलती गईं, मैं लिखती गई। फिर मेरा लिखा उन्होंने पढ़ा। उनके अनुमोदन पर इसे नूपुर में प्रकाशित भी कर दिया गया। इसमें दीदीजी ने 'श्रुति' और 'स्मृति' की अद्‌भुत व्याख्या दी है।

सागर में एक दीपक से जुड़े हुए दो शंख, शंखों के ऊपर कमल का फूल, फूल पर दीपक, चहुँ ओर उस दीपक की ज्योति, यही है श्री म ट्रस्ट का चिह्न।

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज की परम शिष्या और उस समय ट्रस्ट की अध्यक्षा श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता इसकी व्याख्या करते हुए कहती हैं —

— सागर प्रतीक है निष्कामता का।

5 अगस्त, सन् 1882 को ठाकुर रामकृष्ण परमहंस पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिले। विद्यासागर की निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर ठाकुर ने उन्हें कहा था — 'तुम विद्या के सागर हो।'

— सागर में हैं एक दूसरे से जुड़े हुए दो शंख। एक प्रतीक है श्रुति का और दूसरा प्रतीक है स्मृति का। एक शंख में यदि मोती है और दूसरे में नहीं है, तो भी पहले शंख के सम्पर्क में आ जाने से दूसरे में भी मोती उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह जब कोई शिष्य ऐसे गुरु के सम्पर्क में आ जाए जिसमें ईश्वरीय शक्ति हो, तो शिष्य में भी वही

शक्ति आ जाती है। ऐसे गुरु के मुख से शिष्य जो भी सुनता है, उसके लिए वह उसकी श्रुति बन जाती है। सुनी हुई श्रुति के अनुसार पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार — इन चौबीस तत्त्वों द्वारा आचरण करने पर उसे अपना 25वाँ तत्त्व — आत्मज्ञान अनुभव होने लगता है। यही आत्मज्ञान है उसकी स्मृति। तब ज्ञान का दीपक प्रज्वलित हो उठता है, अज्ञान का अन्धकार छँटने लगता है और चहुँ ओर फैले ज्ञान के आलोक में कार्य आरम्भ हो जाता है।

कथामृत में श्रुति है ठाकुर की वाणी। श्री म ने ठाकुर-मुख से उसे सुना, उस पर आचरण किया, उसे आत्मसात किया, प्रतिक्षण उसे जिया तो वह बनी श्री म की स्मृति। वही स्मृति आगे जाकर फिर कथामृत के रूप में बनी श्रुति। इसी तरह श्री म के मुख से इसी श्रुति को जब ठाकुर के भक्तों ने सुना और उस पर आचरण किया तो वह बनी उनकी स्मृति। उसी स्मृति के आधार पर स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने श्री म को जैसा देखा, सुना, अपनी नित्य दैनन्दिन डायरियों में लिखा, पालन किया और फिर उनकी वही डायरियाँ सोलह भागों में महाकाव्य का रूप धारण करके 'श्री म दर्शन' के रूप में बनीं हमारे लिए श्रुति, वेद वाक्य। अत: 'श्री म दर्शन' में जो ठाकुर-वाणी हमारे लिए है, वह है श्रुति, वेदवाक्य।

— कमल के फूल की दो डोडियाँ इस बात का प्रतीक हैं कि मनुष्य दो है — एक सांसारिक जीव, दूसरा चिन्मय भगवदंश। सांसारिक जीव-रूप में सुख-दु:ख के नाना आवर्त्तों में पड़कर जब वह निमज्जमान होगा, तभी भगवान् से सम्पर्कित दूसरा चिन्मय रूप जाग्रत होकर इस निमज्जमान दुर्बल जीव को ही महाशक्तिशाली महावीर के रूप में परिणत कर देगा। भीतर शक्ति आने से उसे विश्वास होगा और तब

— हृदय में कमल का फूल खिल उठेगा। यह खिला हुआ कमल का फूल प्रतीक है भक्ति का। जिस तरह निष्काम सागर में कमल का फूल खिलता है, उसी तरह मनुष्य का कार्य जब निष्काम हो जाता है, तो उसमें भक्ति-भाव प्रस्फुटित होता है, फिर उस भक्तिभाव से जब वह ईश्वर को पुकारेगा, उनसे प्रार्थना करेगा तो

— उसके हृदय में ज्ञान का, विज्ञान का दीपक जलेगा। कमल के फूल पर जो दीपक है, वह इसी विज्ञान की ज्योति है जो व्यक्ति को दिखा देती है — आगे ईश्वर, परे सब।

— दीपक के चहुँ ओर जो ज्योति है, वह वही ज्योति है जो अनन्त काल से अज्ञान के अन्धकार को ज्ञान के आलोक में बदल रही है, जिसका वेदों में वर्णन है, जिसके लिए कहा गया है — धियो यो नः प्रचोदयात्।

— नूपुर-97 पृष्ठ 121-22

भावी कार्यक्रम और श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की will/इच्छा

15-08-1995, मंगलवार, स्वतन्त्रता दिवस

मैं दीदी जी के पास बैठी 'श्री म दर्शन'-पाठ कर रही थी। उन्होंने कहा — निर्मल, स्वामी जी की बड़ी भारी इच्छा थी कि 'श्री म दर्शन' का अध्याय आरम्भ होने से पहले उस अध्याय के संकेत बना दिए जाएँ, दे दिए जाएँ। वे चाहते थे कि पहले 'श्री म दर्शन' के तथा 'कथामृत' के सभी भागों का हिन्दी व अंग्रेज़ी में अनुवाद हो जाए। पीछे यह काम (संकेत वाला) भी हो जाए।

दीदी जी ने मेरी ओर ऐसे देखा मानो मुझसे कह रही हों — निर्मल! यह काम तुम कर दो!

उन्होंने मुख से ऐसा कुछ नहीं कहा। उनका आशय जान मैंने ही कहा, ''ठीक है दीदी जी, 'श्री म-दर्शन' तो मुझे पढ़ना ही है, संकेत भी साथ-ही-साथ लिखे जा सकते हैं।''

''हाँ, हाँ, जरूर करना, हो सके तो। महाराज जी की बड़ी इच्छा थी। मुझसे तो अब काम होता ही नहीं ना!''

''महाराज जी की इच्छा थी यहाँ एक Research Centre बने। 'श्री म दर्शन' पर शोध-कार्य हो। इसके लिए पैसा भी अलग से रखा गया है।''

वे फिर बोलीं, ''देखो, सन्दीप 'गुरु-प्रणाम' का हिन्दी-अनुवाद कर चुका है। उसमें फोटो देना जिसमें स्वामी जी के साथ मेरा और दिलीप बाबू का फोटो है। औरश्री म दर्शन आगे छपेंगे उसमें देना मेरा फोटो और स्वामी जी का; जिसमें हम दोनों का फोटो है। कहीं वह भी देना नूपुर में या जहाँ भी ठीक समझो — मेरा फोटो, पापा जी का और कमल का जो है स्वामी जी के साथ।''

''जी, मैं सब लिख लूँगी जो-जो आप कह रही हैं।''

फिर थोड़ी कथामृत के अनुवाद की बात की।

बोलीं — सारे world में हिन्दी में original कथामृत हमारी है। कथामृत के पाँचों भागों में श्री 'म' ने ठाकुर के भक्तों की बात लिखी है। श्री म दर्शन में भी वे पात्र जहाँ-जहाँ आते हैं, उन्हें नोट करना।

दीदीजी ट्रस्ट-काज से जुड़े अन्य भक्तों, भक्त-सेवकों के समक्ष भी ऐसे ही अपनी इच्छा प्रकट करती रहतीं। श्री 'म' दर्शन में, ट्रस्ट में, ट्रस्ट-कार्यों में उनका मन-प्राण जो बसता था।

अब करणीय यह है कि ट्रस्ट-कार्य से जुड़े सभी जन मिल-बैठ कर ऐसे सभी कार्यों की सूची बनाएँ और फिर एक-एक करके उन्हें करना प्रारम्भ कर दें।

इस सबके लिए हे गुरु माँ! आप ही शक्ति प्रदान करें।

●

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण — भाग 1 से 16 — स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण — भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण — (M., The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M., the Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम बारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष चार भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of M.

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के founder secretary प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित इस वृहद् ग्रन्थ में श्री म के जीवन एवं श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पर प्रचुर सामग्री है।

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

हिन्दी संस्करण — भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली — सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। सभी पाँचों भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

9. नूपुर

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

❖